

भूमिका

लीजिये यह 'केशव' की रामचंद्रिका का संक्षिप्त रूप उपस्थित है। इसे संकलन करने में विशेष विचार इन बातों का रक्खा गया है—(१) कोई उत्तमांश छूटने न पावे, (२) अनावश्यक, कम आवश्यक और कठिन अंश छोड़ दिये जावें, (३) यथासंभव सरस और सरल अंश अवश्य लिये जावें, (४) जिनके पढ़ने पढ़ाने में अथवा किसी को समझाने में संकोच हो ऐसे अंश सरल और सरस होने पर भी छोड़ दिये जावें और (५) यथासंभव वर्णित विषयों का क्रम भी भंग न होने पावे। इन सब कारणों से इस काव्य का बहुत ही थोड़ा अंश छूटने पाया है।

इन उपरोक्त विचारों सहित यह संग्रह प्रस्तुत किया गया है। कुछ त्रुटियां हो जाना संभव ही है, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि निर्मूर्त हो ही नहीं सकती। हम भी मनुष्य ही हैं। अतएव पाठकों से निवेदन है कि उन्हें जहां कहीं कोई त्रुटि जान पड़े, वे कृपा करके सभा के मंत्री को उस त्रुटि की सूचना दें। हमें पूर्ण आशा है कि मंत्री महाशय उनकी सूचना पर विशेष ध्यान देकर उस त्रुटि को आगामी संस्करण में संशोधन कराने का उद्योग अवश्य करेंगे।

केशव बुंदेलखंड के निवासी थे। अतएव इस कविता में सहज भाव से ही कुछ ऐसे ठेठ बुंदेलखंडी शब्द आ गए हैं

जिनका अर्थ अन्य प्रांत निवासी नहीं समझ सकते। यथा-संभव ऐसे शब्दों के अर्थ पाठ टिप्पणियों में दिए गए हैं।

केशव की कविता कठिनता के लिये प्रसिद्ध है। अलंकारों से परिपूर्ण है। श्लेष अलंकारों की भरमार है। किसी किसी छंद में भिन्न पद श्लेष की ऐसी कठिन योजना है कि पदच्छेद करना सरल काम नहीं है। हमने यथाशक्ति पदच्छेद करने में अपनी सतर्क बुद्धि से काम लिया है। पर तो भी बहुत संभव है कि हमसे बहुत सी अशुद्धियां हुई हों। इस लिये पाठकों से क्षमा के प्रार्थी हैं। पाठकों को चाहिये कि ऐसे छंदों के पढ़ने में अपनी सतर्क बुद्धि से भी कुछ काम लें, केवल हमारे ही पदच्छेद पर पाठ को निर्भर न रखें।

रामचंद्रिका के इस संग्रह में हमने एक विशेष परिवर्तन किया है। 'केशव' ने कथाप्रसंग को 'प्रकाशों' में विभक्त किया है। हमने प्रकाशों को हटाकर तुलसीरुत रामायण के क्रम की भांति संपूर्ण कथाप्रसंग को कांड क्रम से रखा है। इसका कारण यही है कि आजकल के पाठक और सर्व-साधारण थोटा इसी क्रम से अधिक परिचित हैं और इसीको पसंद भी करते हैं।

केशव की रामचंद्रिका पर कई टीकाएँ हैं और अच्छी हैं। पर दोष उनमें यह है कि वे प्राचीन ढंग की हैं। नवीन ढंग के प्रेमी पाठकगण ऐसी टीका से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। काव्य की कठिनता तथा टीकाओं के अभाव से

केशव की उत्तम कविता का पठन पाठन प्रायः लुप्त सा हो गया है । इस काव्य के समझनेवाले तथा पढ़ानेवाले दूढ़े नहीं मिलते । यदि हैं भी तो इने गिने । इस काव्य के पठन पाठन के लोप हो जाने से हिंदी साहित्य की बड़ी भारी हानि हो सकती है । इसलिये हम हिंदी साहित्य प्रेमियों का ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहते हैं कि केशव की कविता का प्रचार बढ़ाया जाय और प्रचार तभी बढ़ सकता है जब इन ग्रंथों पर सरल भाषा में नवीन ढंग की टीकाएँ रची जायँ । विहारी और तुलसी की कविता की अनेक टीकाएँ हो जायँ और केशव ऐसे धुरंधर कवि के ग्रंथों की कोई खबर ही न ले, यह कैसे आश्चर्य की बात है । केवल आश्चर्य ही क्यों, हिंदीवालों के लिये निंदा की भी बात है । अस्तु हिंदी प्रेमियों को इस ओर ध्यान देना चाहिये ।

रंगपंचमी }
सं० १९७६, काशी । }

विनीत—
भगवानदीन, संग्रहकर्ता



केशवदास का परिचय

केशवदासजी ओड़छानिवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे । "शीघ्रबोध" नामक ज्योतिष-ग्रंथ के बनानेवाले पंडित काशीनाथजी इनके पिता थे । शिखनखवासे असिद्ध कवि 'बलभद्र' इनके बड़े भाई थे और ऊटपटांग कविता करने वाले कल्याणदास इनके छोटे भाई थे । कहने का तात्पर्य यह कि इनका घर भर कवि, कविताप्रेमी और विद्वान था । केशव ने अपने ग्रंथों में अपना पूर्ण परिचय भली भांति लिखा है । कविप्रिया ग्रंथ में अपना परिचय देते हुए अपने आश्रयदाता राजा तथा उनके समाज का भी पूर्ण परिचय दिया है । रामचंद्रिका में ब्राह्मणों, और विशेष कर सनाढ्य ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा की है और बड़ा माहात्म्य गाया है । बुंदेलखंड में कहीं कहीं इनके वंशधर अब तक पाए जाते हैं ।

केशव का जन्म, संवत् १५६४ में हुआ था । इनके बनाये पांच ग्रंथ हमने देखे हैं अर्थात् (१) रसिकप्रिया (सं० १६४८), (२) रामचंद्रिका (सं० १६५८), (३) कविप्रिया (सं० १६५८), (४) विज्ञान गीता (सं० १६६७) (५) वीरसिंहदेव चरित्र (सं० १६६४) ।

केशवदासजी केवल ओड़छानरेश के दरबार कवि वा मंत्रगुरु ही न थे, वरन उनके मंत्री और मुसाहेब भी थे ।

ज्योतिषी और पुरोहित का भी काम करते थे। कई एक किंवदंतियों से यह भी प्रगट होता है कि केशवदासजी अस्वारोहण और शस्त्रसंचालन में भी कुशल थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। राजाओं के निकटवर्ती लोगों को प्रायः सबही प्रकार की कुशलता दर्कार हुआ करती है, और वे लोग सब बातों में कुशल होते भी हैं। चंद्र बरदाई भी तो पृथ्वीराज के सामंतों में गिना जाता था। वह भी तो दर्बार कचि ही था।

एक बार अकबर ने ओड़छा दरबार पर एक करोड़ रुपया जुर्माना किया था। उस जुर्माने को माफ कराने के लिये केशवदास आगरे भेजे गये थे। केशव ने अपनी काव्यकुशलता से अकबर को और नीतिकुशलता तथा सभाचातुरी से अकबर को प्रसन्न करके वह जुर्माना माफ ही करा लिया था। इस कार्य के उपलक्ष्य में ओड़छा दरबार से केशवदास को जागीर मिली थी जो बहुत दिनों तक उनके वंशज भोगते रहे। अब क्या हाल है सो हम नहीं कह सकते।

ओड़छानरेश मधुकरशाहजी के सबसे बड़े पुत्र रामशाह थे। इन्होंने कुछ दिन ओड़छा में राज्य किया। तदनंतर चंदेरी में जा बसे और ओड़छा का राज्यभार अपने छोटे भाई बीरसिंहदेव के सिर छोड़ा। बीरसिंहदेव बड़े युद्धप्रिय व्यक्ति थे। इसी कारण बड़घा राजधानी से बाहर ही रहा करते थे। राज्यकाज भी मन्त्री मांति न देख सकते थे। इस कारण राज्य-

काज सँभालने का भार इन्होंने अपने छोटे भाई इंद्रजीत पर छोड़ा था। इन्हीं इंद्रजीत के द्वार में केशवदास ने बड़ा सम्मान पाया था।

सुनते हैं रामशाह जी के लिये केशव ने "राम-अलंकृत मंजरी" नामक एक ग्रंथ अलग ही बनाया था, पर हमें उस ग्रंथ के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मधुकरशाह का सबसे छोटा पुत्र कुँ० रतनसिंह था। मधुकरशाह के जीवनकाल ही में इस वीर बालक ने केवल १६ वर्ष की अवस्था में अकबर की सेना से युद्ध किया था। यद्यपि यह बालक उस युद्ध में मारा गया, पर उसने वीरता अच्छी दिखलाई थी। इसी कुँवर रतनसिंह की वीरता की प्रशंसा में, सुनते हैं, केशवदास ने "रतनबावनी" नामक ५२ छंदों की एक छोटी सी पुस्तक रची है। परंतु इस पुस्तक को भी हमने नहीं देखा। तात्पर्य यह कि केशव के रचे हुए ७ ग्रंथों का पता चलता है, जिनमें से पहले कहे हुए पांच तो छप चुके हैं और अंतिम दो अभी तक अप्रकाशित हैं। शायद बुँदेलखंड में उनकी हस्तलिखित प्रतियां मिल सकें। हमने सुना है कि ओड़िछा के राज्य पुस्तकालय में इन दोनों ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां मौजूद हैं। अनुमान होता है कि इसी 'रतनबावनी' को देखकर भूषण कवि ने "शिवाबावनी" का रचना की होगी।

ऐसा प्रसिद्ध है कि तुलसीदास जी के जीवनकाल ही में केशव की मृत्यु हो चुकी थी। केशव ने सं० १६६७ में विज्ञान

शोता बनारस । तुलसीदास की मृत्यु सं० १६०० में हुई, अतः-
 षय अनुमान सिद्ध है कि सं० १६६७ और १६०० के बीच में
 किसी वर्ष केशव की मृत्यु हुई होगी । इस अनुमान से सिद्ध है
 कि केशवदास ने कम से कम ७५ वर्ष की आयु भोगी होगी ।

केशव की कविता पर कुछ विचार प्रबट करना केवल
 पृष्टपेपण ही होगा, क्योंकि इस विषय में मिथयंधुओं ने
 'हिंदी नगर' में विस्तृत समालोचना की है, उससे अधिक
 हम और क्या लिखेंगे ; पर हां इतना अवश्य कहेंगे कि जिन
 पाठकों को कविता से रुचि हो वे केशव के ग्रंथ अवश्य
 देखें । प्रथम तीन ग्रंथों को पूर्णतः समझ लेने से फिर कोई भी
 काव्य ग्रंथ कठिन नहीं रह सकता ।

जो लोग हिंदी-भाषा को भाषा ही नहीं समझते और
 कहते हैं कि हिंदी के शब्दों में मनोभाव प्रगट करने की शक्ति
 बहुत ही अल्प है, उनसे हमारा निवेदन है कि वे केशव के
 ग्रंथ पढ़ें और देखें कि इस भाषा में क्या चमत्कार है । जिस
 भाषा वाले को अपनी भाषा की समृद्धि और पूर्णता का अहं-
 कार हो वह उस भाषा का सर्वोत्तम छंद लेकर केशव के
 सुनिदा छंदों से मिलान करे तो मालूम हो जायगा कि उसकी
 भाषा हिंदी भाषा के सामने तुच्छातितुच्छ है । क्या किसी
 भाषा का कवि अपने किसी छंद के चार चार और पांच पांच
 तरह के शब्दार्थ लगा सकता है ? केशव की कविता में ऐसे
 छंद बहुत हैं जिनका अर्थ तीन तीन तरह से होता है । इतना

ही नहीं, कुछ छंद ऐसे भी हैं जिनका शब्दार्थ पांच पांच तरह का होता है। इसी कठिनता के कारण लोग केशव की कविता कम पढ़ते हैं। हम दावे और अहंकार के साथ कह सकते हैं कि केशव ने हिंदी को वह गौरव प्रदान किया है जो आज तक अन्य किसी भाषा को नहीं प्राप्त हो सका। जिस प्रकार तुलसी अपनी सरलता और सूर अपनी गंभीरता के हेतु सराहनीय हैं, वैसे ही वरन् उससे भी बढ़कर केशव अपनी भाषा की परिपुष्टता के लिये प्रशंसनीय हैं।



रामचंद्रिका

कांड-सूची

		पृष्ठ
१—बाल कांड	१
२—अयोध्या कांड	५३
३—अरण्य कांड	७४
४—किष्किंधा कांड	...	९४
५—सुंदर कांड	१०६
६—लंका कांड	१२३
७—उत्तर कांड	१७२



शमचन्द्रिका

बाल कांड

गणेश-वन्दना

[मनहरण छन्द]

बालक मृगालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल-दीह-दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक-ज्यों पताल पेलि पठवे कलुष को।
दूरि कै कलंक-अंक भवशीश शशि सम,
राखत हैं केशोदास दास के वपुष को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुखे जोवै गजमुख मुख को ॥ १ ॥

सरस्वती वन्दना

बानी जगरानी को उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न केहँ लई।
भावी भूत वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहँ न बखानी काहू पै गई।

(२)

घणै पति चारिमुख पूत वणै पाँच मुख,
नाती वणै पट मुख, तदपि नई नई ॥ २ ॥

राम वंदना

पूरण पुराण अरु पुरण पुराण परि,
पूरण बतारै न बतारै और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न,
नेति नेति कहै वेद छाँड़ि भेद युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ॥ ३ ॥

कवि परिचय

[सुगीतछंद]

सनात्य जाति गुनाढ्य हैं जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव ।
छप्पदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडितराव ।
गणेश सो मुत पाश्या बुध काशिनथ अगाध ।
अशेष शास्त्र विचारिकैं जिन जानियो मत साध ॥ ४ ॥

[दोहा]

उपज्यो त्वहि कुल मंदमति, शटकवि केशवदास ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, भाषा करी प्रकाश ॥ ५ ॥
सोख सै अट्ठायनै, कार्तिकेशुदि शुर्धवार ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तय लोग्गों अथवार ॥ ६ ॥

राम महिमा

[पद्य]

बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीन्हों ।
 मारि न माख्यो शत्रु क्रोध मन वृथा न कीन्हों ।
 जु रि न मुरे संग्राम लोक की लोका न लोपी ।
 दान सत्य सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी ।
 मन लोभ मोह मद काम वश भये न केशवदास भणि ।
 सोइ परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतार मणि ॥ ७ ॥

[चतुष्पदी छंद]

जिनको यद्वा-हंसा जगत प्रशंसा, मुनिजन-मानस रंता ।
 लोचन अनुरूपनि श्याम स्वरूपनि अंजन अंजित संता ।
 कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत विलम्ब न लागै ।
 तिनके गुण कहिहैं सब सुख लहिहैं पाप पुरातन भागै ॥ ८ ॥

[दोहा]

जागति जाकी ज्योति जग, एक रूप स्वच्छंद ।
 रामचंद्रकी चन्द्रिका, वरणत हैं बहुछंद ॥ ९ ॥

[श्लोका छंद]

शुभ सूरजकुल कुलश नृपति दशरथ भये भूपति ।
 तिनके सुत भये चारि चतुर चितचारु चारुमति ।
 रामचन्द्र भुवचन्द्र, भरत भारतभुव-भूषण ।
 लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण ॥ १० ॥

[घत्ता छन्द]

सरयू सरिता तट नगर वसै। अवधनाम यश धाम घर।
 अयश्रोध विनागी सब पुरवासी श्रमरलोक मानहुँ नगर ॥११॥

चिरवामित्र आगमन

[पद्यपद]

गाधिराज को पुत्र साधि सब मित्र शत्रु बल।
 दान रूपान विधान, वश्य कान्हों भुवमंडल।
 कै मन अपने हाथ, जीति जग इन्द्रियगन अति।
 तप बल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति।
 तेहि पुरप्रसिद्ध केशव सुमति काल-अतीतागतनि गुनि।
 तहँ अहून गति पगु धारियो विश्वामित्र पथिन्न मुनि ॥ १२ ॥

सरजू वर्णन

[प्रज्ञप्तिका छन्द]

पुनि आये सरयू सरित तोर।
 तहँ देखे उज्ज्वल श्रमल नीर।
 नय निरखि निरखि द्युति गति गंभीर।
 कहु धरणन लागे सुमति धोर ॥ १३ ॥
 अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
 यह देन शुद्ध गति हुबत आप।
 कहु आपुन अघ-अध गति चलन्ति।
 फल पतितन कहँ ऊरघ फलन्ति ॥ १४ ॥

मदमत्त यदपि मातंग संग ।
अति तदपि पतितपावन तरंग ।
बहु न्हाइ न्हाइ जेहि जल सनेह ।
सब जात स्वर्ग सुकर सुदेह ॥ १५ ॥

गजशाला वणन

[नवपदो छंद]

जहँ तहँ लसत महामदमत्त । वर वारन वार न दल दत्त ।
अंग अंग चरचे अति चंदन । मुंडन भुरक देखिय वंदन ॥ १६ ॥

[दोहा]

दीह दीह दिग्गजन के, केशव मनहुँ कुमार ।
दीन्हे राजा दशरथहिं, दिगपालन उपहार ॥ १७ ॥

वाग वणन

[अरिल्ल छंद]

देखि वाग अनुराग उपलिय ।
बोलत कलध्वनि कोकिल सजिय ।
राजति रतिकी सखी सुबेपनि ।
मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि ॥ १८ ॥
फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत ।
मोदत महा मोद उपजावत ।
उड़त परागन चित्त उड़ावत ।
भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत ॥ १९ ॥

[पादाकुलक छंद]

शुभ सर शोभै । मुनिभन लोभै ।
 सरसिज फूले । अलि रस भूले ॥
 जलचर डोलैं । बहुखग बोलैं ।
 बरणि न जाहीं । उर अरुमाहीं ॥ २० ॥

[हाकलिका छंद]

संग लिये ऋषि शिष्यन घने । पावक से तपतेजनि सने ।
 देखत सरिता उपवन भले । देखन अवधपुरी कहँ चले ॥ २१ ॥

अवधपुरी वर्णन

[मधुभार छंद]

ऊंचे अवास । बहु खज प्रकाश ।
 शोभा विलास । शोभै अकाश ॥ २२ ॥

[आमीर छंद]

अति सुन्दर अति साधु । थिर न रहत पल आधु
 परम तपोमय मानि । दण्ड धारिनी जानि ।

[हरिगाँत छंद]

शुभद्रोण गिरिगण शिष्यर ऊपर उदित श्रीपथि सी ।
 बहु वायु वश पारिद बहोरहि अरुकि-दामिनि-धृति म
 अति किर्धी रुचिर प्रताप-पावक प्रगट मुखुर को च
 यह किर्धी सति सुदेश मेरो करो दिवि खेलति भबो ॥ २३ ॥

[दोहा]

जीतिजोति कोरति लई, शत्रुनको वहुँभाँति ।
पुर पर बाँधी शोभिजै, मानो तिनकी पाँति ॥ २५ ॥

[त्रिभंगी छन्द]

सम सब घर शोभै मुनि मन लोभै,
रिपुगण छोभै देखि सबै ।
बहु दुंदुभि वाजै जनु घन गाजै,
दिग्गज लाजै सुनत जवै ॥
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं विघन न बढ़हीं,
जै जस मढ़हीं सकल दिशा ।
सवई सब विधि छूम वसत यथाक्रम,
देवपुरी सम दिवस निशा ॥ २६ ॥

[दंडकला छंद]

कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राजराज वर वेप वने ।
गणपति सुखदायक पशुपति लायक सुर सहायक कौन गने ।
सैनापति बुधजन मंगल गुरु गण धर्मराज मन बुद्धि घनी ।
बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी ॥ २७ ॥

[हीरक छन्द]

पंडितगण मंडितगुण दंडित-माति देखिये ।
द्वित्रिय वर धर्म प्रवर क्रुद्ध समर लेखिये ।
वैश्य सहित सत्यरहित पाप प्रगट मानिये ।
शूद्र रुकति विप्र भगति जोव जगत जानिये ॥ २८ ॥

[सिंहविलोकित छंद]

अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो ।

कहु बुधियल यचन न जाइ कह्यो ।

पशु पति नारि नर निरखि तवै ।

दिन रामचन्द्र गुण गनत सबै ॥ २६ ॥

✓ [मरहटा छन्द]

अति उच्च अगारनि बनो पगारनि जनु चित्तामणि नारि ॥ २७ ॥

बहु सत मय धूमनि धूपित अंगनि हरि की सी अनुहारि ॥ २८ ॥

चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि ।

जनु विश्वरूप को अमृत आरसी रची विरंचि विचारि ॥ ३० ॥

[सोरठा]

जग यशवन्त विशाल, राजा दशरथ की पुरी ॥

चंद्र सहित सब काल, भालथली जनु ईशकी ॥ ३१ ॥

[कुंडलिया]

पंडित अति सिगरी पुरी, मनहु गिरा गति गूढ़ । १

सिंहन युत जनु चंडिका, मोहति मूढ़ अमूढ़ ॥ १ ॥

मोहति मूढ़ अमूढ़, देय संगद्विति सी सोहै ।

सब शृंगार सदेह, मनो रति मन्मथ मोहै ॥

[सब शृंगार सदेह सकल मुख मुखमा मंडित ।

मनो शची विधि रची विविधि विधि यरणत पंडित ॥

✓ [काव्य छंद]

१/३ मूलन ही की जहां अघोगति केशव गाइय । ७४

होमहु ताशनधूम नगर एक मलिनाइय ॥ १३

दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिलगति सरितन ही में ।

श्रीफल को अभिलाष प्रगट कविकुल के जीमें ॥ ३३ ॥

[दोहा]

अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि ।

मन मोह्यो ऋषिराज को, अद्भुतनगर निहारि ॥ ३४ ॥

[सोरठा]

नागर नगर अपार, महामोहतम मित्र ले ।

तृष्णालता कुठार, लोभसमुद्र अगस्त्य से ॥ ३५ ॥

[दोहा]

विश्वामित्र पवित्र मुनि, केशव बुद्धिउदार ।

देखत शोभा नगर की, गये राजदरवार ॥ ३६ ॥

शोभित बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप ।

तहँ राजा दशरथ लसै, देवदेव अनुरूप ॥ ३७ ॥

देखि तिन्हें तब दूर ते, गुदरानो^१ प्रतिहार ।

आये विश्वामित्रजू, जनु दूजो करतार ॥ ३८ ॥

उठि दौरे नृप सुनत ही, जाइ गहे तब पाइ ।

लै आये भीतर भवन, ज्यौं सुरगुरु सुरराइ ॥ ३९ ॥

[सोरठा]

सभा मध्य बैताल,^२ ताहि समय सो पढ़िउठ्यो ।

केशव बुद्धि विशाल, सुंदर सूर्यो भूप सो ॥ ४० ॥

१—गुदरानो=निवेदन किया । २—बैताल=भाट, बंदी ।

[घनाक्षरी]

चैताल—विध के समान हैं विमानीकृत राजहंस,^१
 विविध विबुधयुत मेरु से अचल है।
 दीपति दिपति अति सार्ती दीप दीपियतु,
 दूसरो दिलीप से सुदक्षिणा को बल है।
 सागर उजागर को बहु घाहिनी को पति,
 छुनदान प्रिय किधों सूरज अमल है।
 सब विधि समर्थ राजै राजा दशरथ,
 भगीरथपथगामी गंगा कैसो जल है ॥ १

[दोहा ।]

यद्यपि इंधन जरि गये, अरिगण केशवदास ।
 तदपि प्रतापानलन के, पत पल बढ़त प्रकाश ॥ ४२ ॥

[तोमर छन्द]

बहु भाँति पूजि सुराइ। कर जोरिकै परे पाइ ॥
 हँसिके कल्यो ऋषिमिथ। अब बैठ राजपवित्र ॥४३॥
 मुनि—मुनु दानमानसहंस। रघुवंश के अवतंस ॥
 मन माँह जो अति नेह। यहु यात माँगे देहु ॥४४॥

[दोषक छंद]

राम गये जवतें वन माहीं। राजस घेर करं बहुघाहीं ॥
 रामकुमार हमें नृप दीजै। ती परिपूरण यज्ञ करीजै ॥४५॥

[तोटक छंद]

यह बात सुनी नृप नाथ जबै ।
शर से लगे आखर चित्त सबै ।
मुख ते कछु बात न जाइ कही ।
अपराध विना ऋषि देह दही ॥ ४६ ॥

राजा—अति कोमल केशव बालकता ।
बहु दुष्कर राजस बालकता ।
हमहीं चलिहैं ऋषि संग अवै ।
सजि सैन चलै चतुरंग सबै ॥ ४७ ॥

विश्वामित्र—

[पद्यपद]

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणीरिपु-जुद्धनि ।
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयन्दनि ।
जिन वेधत सुख लक्ष लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि ।
तिन वारणनि वाराह बाध मारत नहिं सिंहनि ।
नृपनाथनाथ दशरथ सुनिय अकथ कथा यह मानिये ।
मृगराजराजकुलकलश अथ बालक वृद्ध न जानिये ॥ ४८ ॥

[मोदक छंद]

राजा—मैं जो कह्यो ऋषि देन सो लीजिय ।
काज करो हठ भूलि न कीजिय ॥
प्राण दिये धन जाहिं दिये सब ।
केशव राम न जाहिं दिये अब ॥ ४९ ॥

ऋषि—राज तज्यो धन धाम तज्यो सब ।
नारि तज्यो सुत शोच तज्यो तब ॥

(१२)

आपनपौ जो तज्यौ जगबंद है ।
सत्य न एक तज्यौ हरिचंद है ॥ ५० ॥

[दोहा]

जान्यो विश्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आई ।
राजादशरथ सों कह्यो, बचन वशिष्ठ बनाई ॥ ५१ ॥

वशिष्ठ— [पद्य]

इनहीं के तपतेज यज्ञ की रक्षा करिहैं ।
इनहीं के तपतेज सकल राक्षस बल हरिहैं ॥
इनही के तपतेज तेज बढ़िहैं तन तूरण ।
इनही के तपतेज होहिगे मंगल पूरण ।
कहि केशव जैयुन आईहैं इनही के तपतेज घर ।
नृप बेगि राम लक्ष्मण दोऊ सौंपौ विश्वामित्र कर ॥ ५२ ॥

[दोहा]

नृप पै बचन वशिष्ठ को, कैसे भेट्यो जाइ ।
सौंन्या विश्वामित्र कर, रामचन्द्र अकुलाइ ॥ ५३ ॥

[पंकजवाटिका छंद]

राम चलत नृप के युग लोचन ।
वारिमरित भये वारिदरोचन ।
पावन परि भ्रूपि के सजि भौनहि ।
केशव उटि गये भीतर भौनहि ॥ ५४ ॥

[चामर छन्द]

वेद मंत्र तंत्र शोधि अस्त्र शस्त्र दे भले ।
रामचन्द्र लक्ष्मणै सो विप्र क्षिप्र लैचले ।
लोभ लोभ मोह गवं काम कामना हई ।
नींद भूख प्यास त्रास वासना सबै गई ॥ ५५ ॥

[निशिपालिका छन्द]

कामवन राम सब वास तरु देखियो ।
नैन सुखदैन मन नैनमय लेखियो ।
ईश जहँ कामतनु कै अतनु डारियो ।
छोड़ि वह यहथल केशव निहारियो ॥ ५६ ॥

[दोहा]

रामचंद्र लक्ष्मण सहित, तन मन अति सुख पाइ ।
देख्यो विश्वामित्र को, परम तपोवन जाइ ॥५७॥

तपोवन वर्णन

[पद्य]

तरु तालीस तमाल ताल हिताल मनोहर ।
मंजुल चंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर ।
पला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं ।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं ।
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन ।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन ॥५८॥

(१४)

[सुप्रिया छंद]

कहुँ द्विजगण मिलि सुख थुति पढ़हीं ।
कहुँ हरिहरि हरहर रट रटहीं ।
कहुँ मृगपति मृगशिशु पय पियहीं ।
कहुँ मुनिगण चितवत हरि हियहीं ॥ ५६ ॥

[नराच छंद]

विचारमान ग्रह देव अर्चमान मानिये ।
अदीयमान दुःख सुख दीयमान जानिये ।
अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै ।
अपट्टमान पापग्रन्थ पट्टमान वेदवै ॥ ६० ॥

[चंचला]

दिवे को यज्ञथल बैठे वीर सावधान ।
न लागे होम के जहां तहां सबे विधान ।
भीममाँति ताडुका सो भंग लागि कर्न आइ ।
घान तानि राम पै न नारि जानि छाँड़ि जाइ ॥ ६१ ॥

[सौरठा]

श्रुति—कर्म करति यह घोर, विघ्न को दशहू दिशा ।
मत्त सहस्र गज जोर, नारी जानि न छाँड़िये ॥ ६२ ॥

[देहा]

द्विजदोषी न विचारिये, कहा पुरुष कह नारि ।
राम विराम न कीजिये, घाम ताडुका तारि ॥ ६३ ॥

ताडुका सुवाहु बध

[मरहटा छंद]

यह सुनि गुरुवानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि ।
ताडुका सँहारी दारुण भारी नारी अति बल जानि ॥
मारीच विडाखो जलधि उताखो माखो सबल सुवाहु ।^१
देवनि गुन पर्यो पुष्पने वप्यो हप्यो अति सुरनाहु ॥ ६४ ॥

[दोहा]

पूरण यज्ञ भयो जहीं, जान्यो विश्वामित्र ।
धनुपयज्ञ की शुभ कथा, लागे सुनन विचित्र ॥ ६५ ॥

विप्र कथित स्वयंवर कथा

[दोहा]

खण्डपरस^१ को शोभिजे, सभामध्य कोदंड ।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार वरिवंड ॥ ६६ ॥

✓ [सवैया]

शोभित मंचन की अवली गजदंतमई छवि उज्ज्वल छाई ।
ईश मनौ वसुधा में सुधारि सुधाधरमंडल मंडि जोन्हाई ।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई ।
देवन स्यो^२ जनु देवसभा शुभ सीयस्वयम्बर देखन आई । ६७ ॥

॥ सोरठा ॥

सभामध्य गुणग्राम, वंदी सुत द्वै शोभहीं ।

सुमति विमति यह नाम, राजन को वर्णन करैं ॥ ६८ ॥

(१६)

[दोहा]

सुमति—को यह निरखत आपनी, पुलकित याहु विशाल ।
सुरभि^१ स्वयंवर अनु करो, मुकुलित शाख रसाल ॥६६॥

[सोरठा]

धिमति—ज्यहि यशपरिमल मत्त, चंचरोक चारण फिरत ।
दिशि विदिशन अनुरक्त, सो तौ मलिकापोड़नूप ॥७०॥

[दोहा]

सुनति—जाके सुखमुख^२ वास ते, घासित होत दिगंत ।
सो पुनि कहु यह कोन नूप, शोमित शोभ अनंत ॥७१॥

[सोरठा]

धिमति—^{मु}राजराजदिग्याम, माल लाल लोभी सदा ।
अति प्रसिद्ध जग नाम, काशमोर को तिलक यहाँ ७२।^३

[दोहा]

सुमति—निज प्रताप दिनकर करत, लोचन कमल प्रकाश ।
पान खात मुसुकात मृदु, को यह केणवदास ॥७३॥

[सोरठा]

धिमति—नूप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भागतो ।
कटितट सुपट सुबेश, कल कांची शुभ मंडर ॥७४॥

१ सुरभि=नरगत । २ मुसुमुठ=सदत । ३ रामराम=गुदेर ।

(१७)

[दोहा]

सुमति—कुण्डल परसन मिस कहत, कहौ कौन यह राज ।

शंभुशरासन गुन करों, करनालम्बित आजः॥७५॥

[सारठा]

विमति—जानहिं बुद्धिनिधान, मत्स्यराज यहि राज को ।

समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहि कै ॥७६॥

[दोहा]

समति—अंगराग रंजित रुचिर, भूषण भूषित देह ।

कहत विदूषक सों कछू, सो पुनि को नृप येह ॥७७॥

[सारठा]

विमति—चन्दनचित्रित रंग, सिंधुराज यह जानिये ।

बहुत बाहिनी संग, मुक्तामाल विशाल उर ॥ ७८ ॥

[दोहा]

सिगरे राज समाज के, कहे गोत्र गुण ग्राम ।

देश सुभाव प्रभाव अरु, कुल बल विक्रम नाम ॥ ७९ ॥

[घनाक्षरी]

पावक पवन मणिपद्मग पतंग पितृ,

जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिपिन गाये हैं ।

असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,

केशव चराचर जे वेदन बताये हैं ।

अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब,

परणि सुनावै ऐसे कोने गुण पाये हैं ।

साँता के स्वयंवर को रूप अवलोकिये कों,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥ ८० ॥

[विजय]

दिकपालन की भुचपालन की लोकपालन की किन मातु गई व्यै ।
ठाढ़ भये उठि आसन ते कहि केशव शम्भुशरासन को छुवै ।
काह चढ़ायो न काह नवायो न काह उठायो न आँशुरहू है ।
स्वारथ भो न भयो परमारथ आये है धीर चले घनिता है ॥ ८१ ॥

रामचन्द्र का जनकपुर में आगमन

[दोहा]

काह को न भयो कहं, ऐसो सगुन न होत ।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उहोत ॥ ८२ ॥

सूर्योदय वर्णन

राम— [चौपाई]

कहु राजत सूरज अरुन खरे । जनु लक्षण के अनुराग भरे ।
चितवतचित्तकुमुदिनी प्रसै । चोर चकोर चिता सो लसै ॥ ८३ ॥

[पद्यपद]

लक्षण—अरुण गात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय ।
मानहुं केशवदासै काकतद् काकप्रेममय ।
परिपूरण सिद्धरूप कैधौ मंगलवट ।
कैधौ शक को छत्र मढ़यो मानिकमयूपपट ॥
कै श्रोणितकलित कपाल यह किले कपालिका काल को ।
यह ललित लाल कैधौ लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥ ८४ ॥

[तोटक छन्द]

पसरे कर कुमुदिनि काज मनो ।
 किधौं पद्मिनि को सुखदेन घनो ।
 जनु ऋत्तु सवै यहि त्रास भगे ।
 जिय जानि चकोर फँदान ठगे ॥ २५ ॥

[चंचरीछन्द]

रामचन्द्र—श्याम में मुनि देखिये श्रतिलाल श्रीमुख साजहीं ।
 सिंधुमें वड़वाशि की जनु ज्वालमाल विराजहीं ।
 पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई ।
 सूर वाजिन की खुरी अति तिक्तता तिनकी हुई ॥ २६ ॥

[सोरठा]

विश्वामित्र—चढयो गगनतरु धाइ, दिनकर-वानर अरुणमुख ।
 कीन्हौं भुकिं भरुइ, सकल तारका कुसुम विन ॥ २७ ॥

[दोहा]

लक्ष्मण—जँहो वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज ।
 तहाँ कियो भगवन्त विन, संपति शोभा साज ॥ २८ ॥

[तोमर छन्द]

चहुँभाग वाग तड़ाग । अरु देखिये वड़भाग ॥
 फल फूल सों संयुक्त । अलि यों रमै जनु मुक्त ॥ २९ ॥

[दोहा]

रामचन्द्र—ते न नगरि ना नागरी, प्रतिप
 जलजहार शोभित न जहँ, प्रगट पयाधर पान ॥ ३० ॥

[सवैया]

सातह्रदीपन के अयनीपति हारि रहे जियमें अब जाने ।
बीसविसे^१ व्रत भंगमयो सो कही अब केशव को धनु ताने ।
शोक की आगि लगी परिपूरण आइगये घन श्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सय फूलिउटे तरुपुण्य पुराने ॥६१॥

विश्वामित्र और जनक की भेंट

[दोधकछन्द]

आइगये ऋषिराजहि लाने । मुख्य सतार्नद विप्र प्रवीने ।
देखि दुयौ भये पांयनि लाने । आशिय शीरपवामु लै दीने ॥६२॥

[सवैया]

विश्वामित्र—

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरतिबेलि भई है ।
दानरूपान विधानन सोंसिगरी वसुधा जिन हाथ लई है ।
अंग छ सातक आठक सों मेघ तीनिहु लोक में सिद्धि भई है ।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगभई है ॥ ६३ ॥

[सारंग]

जनक—जिन अपना तनस्वर्ण, मेलि तपोमय अग्निमें ।
कान्हों उच्चमवर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥ ६४ ॥

[मोहन छंद]

लक्ष्मण—जनराजवंत । जगयोगवंत ।
तिनको उदोन । केहि भाँति होत ॥ ६५ ॥

१—बीस बिसे=बीसो विस्तार, विषय ।

[विजय]

श्रीराम—

सब छत्रिन आदि दै काहु छुई न छुये विजनादिक बात डगै ।
 न घटै न बढ़ै निशि वासर केशव लोकन को तमतेज भगै ।
 भवभूषण भूपित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै ।
 जलहं थलहं परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै ॥६६॥

[तारक छन्द]

जनक—यह कीरति और नरेशन सोहै ।

सुनिदेव अदेवन को मन मोहै ।

हम को वपुरा सुनिये ऋषिराई ।

सब गांउं छ सातक की ठकुराई ॥ ६७ ॥

[विजय छन्द]

विश्वामित्र—

आपने आपने ठौरनि, तौ भुवपाल सबै भुव पालें सदाई ।
 केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई ।
 भूपति की तुमहीं धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
 केशव भूपन को भव भूषण भू तन तैं तनया उपजाई ॥ ६८ ॥

[दोहा]

जनक—इहि विधि की चित चातुरी, तिनको कहा अकथ्य ।

लोकन की रचना रुचिर, रचिवे को समरत्य ॥ ६९ ॥

[सवैया]

लोकन की रचना रचिवे को जहीं परिपूरण बुद्धि विचारी ।
 है गई केशवदास तहीं सब भूमि अकाश प्रकाशित भारी ।

शुद्ध^१ सलाक^२ समान लसी अति रोष मई हगदीठि तिहारी ।
शेत मये तब सूर सुधाघर पावक शुभ्र सुधारैंगधारी ॥

[दोहा]

केशव विश्वामित्र के, रोषमई हगजानि ।
संघ्यासी तिहुँ लोक में, केहि न उपासी आनि

[दोधक छन्द]

जनक—ए मुन कोन के शोभहि साजे ।
सुंदर श्यामल गौर विराजे ।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ ।
कै कमला विमला^३ पति कोऊ ॥ १०२ ॥

[चौपाई]

विश्वामित्र—

सुंदर श्यामल राम मु जानों । गौर सुलक्ष्मण नाम ब्रह्मज्ञानों ॥
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ । सूरज के कुलमंडन दोऊ ॥ १०३ ॥

[दोहा]

नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चारि कुमार ।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥ १०४ ॥

१०४ [यत्नाक्षरी]

दानिन के शील पर दान के ग्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के ।

१—शुद्ध=तीक्ष्ण । २—सलाक=बाण । ३—विमला=भरम्वती ।

दोप दोप हूं के अरुनीपन के अरुनीप ,
 पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के ।
 आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये ,
 परदारप्रिय साधु मन वच काय के ।
 देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से राज ,
 राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥ १०५ ॥

[तार छन्द]

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो ।
 अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो ।
 जनक—ऋषि है वह मन्दिर माँझ मँगाऊं ।
 गहिल्यावहिं हैं जनयूथ बुलाऊं ॥ १०६ ॥

[दंडक छंद]

वज्रते कठोर है कैलास ते विशाल काल-
 दंड ते कराल सब काल काल गावई ।
 केशव त्रिलोक के विलोक हारे देव सब ,
 छोड चंद्रचूड एक और को चढ़ावई ।
 पद्मग प्रचंड प्रति प्रभु की पनच पीन ;
 पर्वतारि पर्वत प्रभा न मान पावई ।
 विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहिं ,
 कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई

[तोमर]

विश्वामित्र—सुनि रामचन्द्र कुमार । धनु आनिये यहि वार ॥
 मुनि वेगि ताहि चढ़ाव । यश लोक लोक बढ़ाव ॥ १०७ ॥

घनुप भंग

[दोहा]

अपिदि देखि हरप हियो, राम देखि कुन्हलाइ ।
घनुप देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाइ ॥१०६॥

[स्वागता छन्द]

रामचन्द्र कटिसौं पटुवांघ्यो । लीलपथ हर को घनु साथ्यो ॥
नेकुताहिकरपल्लवसोद्युवै ॥ फूलमूल जिमि टूक कखो द्वै ॥११०॥

[सर्वथा]

उत्तम गाय सनाय जबै घनु श्री रघुनाथ जु हाय कै लीनो ।
निगुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो ।
पचो जही तबही कियो संयुत तिच्छु कटाक्ष नराच नयोनो ।
राजकुमारनिहारिसनेहसौं शंभु को सांचो शरासन कीन्हो ॥१११॥

[विजया छंद]

प्रथम टंकोर मुक्ति भारि संसार मद
चंड को चंड रह्यो मंडि ननु चंड को ।
चालि अचला अचल घालि दिग पाल बल
पालि अपिराज के वचन परचंड को ।
सोघु दै ईशु को सोघु जगदीशु को ।
कोघु उपजाइ भृगुनंद धरिचंड को ।
बांधि धर स्वर्ग को साधि अपवर्ग घनु-
भंग को शब्द गया भेदि ब्रह्मंड को ॥

(२५)

[दोहा]

जनक—सतानंद आनंद मति, तुम जो हुते उन साथ ।

वरज्यो काहे न धनुष जब, तोखो श्रीरघुनाथ ॥११३॥

[तोमर]

सतानंद-सुनु राजराज विदेह । जब हौं गयो वहि गेह ।

कछु मै न जानी वात । कव तोरियो धनु तात ॥११४॥

[दोहा]

सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल ।

पहिराई जनु सवन की, हृदयावलि भूपाल ॥११५॥

[चित्रपदाच्छंद]

सीय जहीं पहिराई । रामहि माल सुहाई ।

दुंदुभि देव वजाये । फूल तहीं वरसाये ॥११६॥

बरात आगमन

[दोहा]

पठई तबहीं लगन लिखि, अवधपुरी सब वात ।

राजा दशरथ सुनतहीं, चाह्यो चली बरात ॥११७॥

[मोटनक छंद]

आये दशरथ बरात सजे । दिगपाल गयंदनि देखि लजे ।

चाखों बल दूलह चारु बने । मोहे सुर औरनि कोन गनै ॥११८॥

[तारकछंद]

बनि चारि बरात चहुँदिशि आई ।

नृप चारि चमू अगवान पठाई ॥

जनु सागर को सरिता पशुधारी ।

तिनके मिलिये कहँ धाहँ पसारी ॥११६॥

[दोहा] ^{लन}

८१०. धारोटे^१ को चार करि, कहि केशव अनुरूप ।

द्विज दूलह पहिराइयो, पहिराये सब भूप ॥१२०॥

[विभंगी छंद]

दशरथ्य सँघाती सकल वराती बनि बनि मंडप भाहँ गये ।

आकाश विलासी प्रभा प्रकाशी जलज शुच्छ जनु नलत नये ।

अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगल गारी देन लगी ।

बाजे बहु वाजत जनु वन गाजत जहां तहां शुभ शोभ जगी ॥१२१॥

[दोहा]

रामचन्द्र सीता सहित, शोभत हैं त्यहि ठौर ।

सुवरणमय मणिमय खचित, शुभ सुंदर शिर मौर ॥१२२॥

विघ्राह

[पदपद]

बैठे मागध मृत विविध विद्याधर चारण ।

केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभनिवारण ।

भरद्वाज जावालि अत्रि गोतम कश्यप मुनि ।

विश्वामित्र पवित्र विप्र मति वामदेय पुनि ।

सब भांति प्रतिष्ठित निष्ठमति नहँ वशिष्ठ पूजत कलश ।

शुभ सतानंद मिलि उच्चरत शापोच्चार सब सरस ॥१२३॥

१-धारोटे के चार=दरवाजा चार, द्वार पूजा ।

[अत्रुकूल छंद]

पावक पूज्यो समिध सुधारो ।
आहुति दीनी सब सुख कारो ।
दे तब कन्या बहु धन दोन्हो ।
भाँवरि पारि जगत यश लीन्हो ॥१२४॥

[स्वागता छन्द]

राजपुत्रिकनि सों छवि छायें । राज राज सब डेरहि आयें ।
हीर चीर गज वाजि लुटायें । सुंदरीन बहु मंगल गायें ॥१२५॥

शिष्टाचार

[सोरठा]

वासर चौथे याम, सतानंद आगू दिये ।
दशरथ नृप के धाम, आये सकल विदेह वनि ॥ १२६ ॥

[दोहा]

आगेहैं दशरथ लियो, भूपति आवत देखि ।
राजराज मिलि बैठियो, ब्रह्मब्रह्म ऋषि लेखि ॥ १२७ ॥

[सवैया]

जनक—

सिद्ध समाज सजै अजहूँ न कहूँ जग योगिन देखन पाई ।
रुद्र के चित्त समुद्र वसै नित ब्रह्महृ पै चरणी जो न जाई ॥
रूप न रङ्ग न रेप विशेष अनादि अनन्त जो चैवन गाई ।
केवल गाधि के नन्द हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत देखी ॥१२८॥

[तारक छंद]

जिनके पुरिया भुव गंगहि ल्याये ।
नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये ।
जिनके सुत पाहन ते तिय कीनी ।
हर को धनुमंग भ्रमें पुर तीनी ॥ १२६ ॥
जिन आपु अदेव अनेक सँहारे ।
सब काल पुरन्दर के रखवारे ।
जिनकी महिमाहि अनंत न पायो ।
हम को वपुरा यश वेदनि गायो ॥ १२७ ॥
यिनती करिये जन जो जिय लेखो ।
दुखदेख्यो ज्यों कालिहत्यों आजहु देखो ।
यह जानि हिये डिठर मुख भारी ।
हम हैं चरणोदक के अभिलापी ॥ १२८ ॥

[तामरस छन्द]

जय ऋषिराज विनय करि लीनों ।
सुनि सब के कृष्ण रस मीनों ।
दशरथ राय यहै जिय जानी ।
यह धह एक भई रजधानी ॥ १२९ ॥

[दोहा]

दशरथ—हमको तुम से नृपति को, दासी दुलभ राज ।
पुनि तुम दीनी कन्यका, त्रिभुवन की शिरताज ॥ १३० ॥

[विजय छंद]

पशिष्ट—

एक सुखी यहि लोक विलोकिये हैं वहि लोक निरै पगुधारी ।
 एक इहां दुख देखत केशव होत वहां सुरलोक विहारी ।
 एक इहांऊ उहां अति दीन सो देत दुहं दिशि के जन गारी ।
 एकहि भाँति सदा सबलोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारो ॥१३४॥

जाबालि—

ज्यों मणि में अति ज्योति हुती रवि ते कछु और महाछवि छाई ।
 चंद्रहि वंदत हैं सब केशव ईश ते वंदनता अति पाई ॥
 भागीरथी हुतिय अति पावन वावन ते अति पावनताई ॥
 त्यों निमिवंश बड़ोई हुतो भइ सीय सँयोग बड़ीये बड़ाई ॥१३५॥

[दोहा]

पूजि राज ऋषि ब्रह्म ऋषि, दुंदुभि दीन्हि बजाइ ।
 जनक कनक मन्दिर गये, गुरु समेत सुख पाइ ॥ १३६ ॥

जेंवनार

[चामर छंद]

आसमुद्र के क्षितीश और जाति को गने ।
 राजभान भोज को सबै जने गये। वने ।
 भाँति भाँति अन्नपान ध्यंजनादि जेंवहीं ।
 देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं ॥ १३७ ॥

[हरिगीत छंद]

*अथ गारि तुम कहँ देहिँ हम कहि कहा दूलह, रामजू ।
कछु थाप प्रिय परदार सुनियत करी कहतँ ^{वि. ८१२५४. १०१६} कुवामजू ।
को गने कितने पुरुष कीन्हँ कहत सब संसारजू ।
सुनि कुंवरचितदँ वरणि ताको कहिय सब ध्योहारजू ॥१३८॥

बहु रूप सों नवयोचना बहु रत्नमय वपु मानिये ।
पुनि वंश ^{नव} रत्नाकर यन्यो अति चित्त चंचल जानिये ॥
शुभ शेष फल मणिमाल पलिका परति करति प्रबंधजू ।
करि शीश पश्चिम पाँय पूरव गात सहज सुगंधजू ॥१३९॥

यह हरी हठि हिरनाक्ष दयत देखि सुंदर देह सों ।

वरवीर यमवराह वर ही लई छीनि सनेह सों ॥

हैं गई बिहवल अंग पृथु फिरि सजे सकल शृंगारजू ।

पुनि कछुक दिन वश भई ताके लियो सरवस सारजू ॥१४०॥

बह गयो प्रभु परलोक कीन्हों हिरणकश्यप नाथजू ।

तेहि मांति भौंतिन भोगियो भ्रमि पल न छौंढ्यो साथजू ॥

यह अमुर श्रीनरसिंह भाखो लई प्रबल छुडार कै ।

लै दई हरि हरिचंद राजहि बहुत जो मुख पाइ कै ॥ १४१ ॥

हरिचन्द्र विश्यामित्र को दई दुष्टता जिय जानि कै ।

तेहि घरी बुलि यरिचंड वर ही विप्र तपसी जानि कै ।

* ऐसा करते हैं कि केशवदास के कहने से यह 'गारी' प्रतीत्यारप पातुंग ने बना दी थी ।

बलि घांघि छल बल लई वावन दर्ई इंद्रहि आनिकै ।
 तेहि इन्द्र तजि पति कख्यो अर्जुन सहस भुज को जानिकै ॥१४२॥

तव तासु मदछवि छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू ।
 परशुराम सो सकुल जाख्यो प्रबल बल की अग्नि जू ।
 तेहि बेर तवही सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइ कै ।
 इकबीस बेरा दर्ई विप्रन रुधिर जल अन्हवाइ कै ॥ १४३ ॥

वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थुंकि कै ।
 अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ताकहँ दुंकि कै १ ॥

यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू ।
 अब और मुख निरखैं न ज्यों त्यों राखियो रघुनाथ जू ॥१४४॥

चरात विदाई

[सोरठा]

प्रात भये सब भूप, वनि वनि मंडप में गये ।
 जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब शोभिजै ॥ १४५ ॥

[नाराच छन्द]

रची विरचि वास सी निथम्बराजिका भली
 जहाँ तहाँ विछावने बने घने थली थली ।
 वितान श्वेत श्याम पीत लाल नीलका रंगे ।
 मनो दुहँ दिशान के समान विम्ब से जगे ॥ १४६ ॥

१-रहे ताकहँ दुंकि कै=उसकी ताक लगाये हैं । वसे छेने की ताक में हैं ।

४२/१ [पद्मटिका छन्द]

गज मोतिन की अचली अपार ।
 तहँ कलशन पर उरमति सुदार ।
 शुभ पूरित रति जनु सचिर धार ।
 जहँ तहँ अकाश गंगा उदार ॥ १४७ ॥
 गज दन्तन^१ की अचली सुदेश ।
 तहँ कुसुमराजि राजति सुवेश ।
 शुभ नृप कुमारिका फरति गान ।
 जनु देविन के पुष्पक विमान ॥ १४८ ॥

[तामरस छन्द]

इत उत शोभित सुन्दरि डोलैं ।
 अर्य अनेकनि बोलनि बोलैं ।
 मुखमुख मंडल चित्तनि मोहैं ।
 मनहुं अनेक कलानिधि सोहैं ॥ १४९ ॥
 भ्रुकुटि विलास प्रकाशित देखे ।
 धनुष मनोज मनोमय लेखे ॥
 चरचित हास चन्द्रकनि माने ।

५ मुखमुख वासनि वासित जाने ॥ १५० ॥

[दोहा]

अमल कपोलै आरसी, याह चम्पक मार ।
 अवलोकनै विलोकिये, मृगमद मय घनसार ॥ १५१ ॥

पलकाचार

[लवैया]

बैठे जरायु जरे पलिका पर रामसिया लव को मन मोहें ।
ज्योति समूह रहे मढ़िकै सुर भूलि रहे वपुरे नर को हैं ।
केशव तीनिहुं लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहें ।
शोभन सुरजमंडल मांभ मनो कमला-कमलापीत सोहें ॥१५२॥

राम का शिखनख

[दोहा]

गगाजल^१ की पाग शिर, सोहत श्रीरघुनाथ ।
शिव शिर गङ्गाजल किधौं, चन्द्र चन्द्रिका साथ ॥१५३॥

[तोमर छन्द]

कछु भ्रुकुटि कुटिल सुवेश । अति अमल सुमिल सुदेश ।
विधि लिख्यो शोधि सुतंत्र । जनु जया जय के मंत्र ॥१५४॥

[दोहा]

यदपि भ्रुकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियत ज्योति ।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्धगति होति ॥१५५॥
श्रवण मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र ।
शशि समीप सोहत मनो, श्रवण मकर नक्षत्र ॥१५६॥

१—गंगाजल=रक प्रकार का कपड़ा ।

४-४ [पद्मटिका छन्द]

गज मोतिन की अवली अपार ।
तहँ कलशन पर उरमति सुदार ।
शुभ पूरित रति जनु रचिर धार ।
जहँ तहँ अकाश गंगा उदार ॥ १४७ ॥
गज दन्तन^१ की अवली सुदेश ।
तहँ कुसुमराजि राजति सुवेश ।
शुभ नृप कुमारिका करति गान ।
जनु देविन के पुष्पक विमान ॥ १४८ ॥

[तामरस छन्द]

इत उत शोमित सुन्दरि डोलें ।
अर्य अनेकनि बोलनि बोलें ।
सुखमुख मंडल चित्तनि मोहें ।
मनहुं अनेक कलानिधि सोहें ॥ १४९ ॥
अकुटि विलास प्रकाशित देखे ।
धनुष मनोज मनोमय लेखे ॥
चरचित हास चन्द्रिकनि माने ।
सुखमुख वासनि वासित जाने ॥ १५० ॥

[दोहा]

अमल कपोलै आरसी, याह चम्पक मार ।

अवलोकनै विलोकिये, मृगमद मय धनसार ॥ १५१ ॥

(२२)
पलकाचार

[सवैया]

चैटे जराय जरे पलिका पर रामसिया लव को मन मोहैं ।
ज्योति समूह रहे मड़िकै सुर भूलि रहे वपुरे नर को हैं ।
केशव तीनिहुं लोकन की श्रवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं ।
शोभन सूरजमंडल मांभ मनो कमला-कमलापीत सोहैं ॥१५२॥

राम का शिखनख

[दोहा]

गगाजल^१ की पाग शिर, सोहत श्रीरघुनाथ ।
शिव शिर गङ्गाजल किधौं, चन्द्र चन्द्रिका साथ ॥१५३॥

[तोमर छन्द]

पद्म भ्रुकुटि कुटिल सुवेश । अति अमल सुमिल सुदेश ।
विधि लिख्यो शोधि छुतंत्र । जनु जया जय के मंत्र ॥१५४॥

[दोहा]

यदपि भ्रुकुटि रघुनाथ की, कुटिल देदियत ज्योति ।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्धगति होति ॥१५५॥
श्रवण मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र ।
शशि समीप सोहत मनो, श्रवण मकर नक्षत्र ॥१५६॥

१—गंगाजल=रक प्रकार का कपड़ा ।

[पञ्चटिका छन्द]

अति वदन शोभ सरसी^१ सुरग।
नर्द कमल नयन नामा त्रंग।
जनु युवति चित्त विभ्रम विलास।
तेड भ्रमर भंयत रस रूप आस ॥ १५३ ॥

[निशिपालिका छन्द]

शाभिजति इन्तराचि^२ शुभ उर आनिये।
सव्य चनु रूप अनुरूपक बखानिये।
आट रचि रस सपिण्डेप शुभ धीग्ये।
शाधि चनु ईश शुभ लक्षण सबै ह्ये ॥ १५४ ॥

शाशा ।

आशा धीग्युनाथ की लसति कम्बुवर घेप।
साधु मना बच काय की लानो लिखी बिरये ॥ १५६ ॥

[सुन्दरी छन्द]

मानस वीर्य वाहु विराजत।
दर मिरगत अक्षय न लानत।
वसिन्त के आशिरान रमानहु।
ह तिनहारिन की धवन मानहु ॥ १६० ॥
सा उर भ जगु लान बखानहु।
शा उर के सरसीज मानहु।

१—१ सा=नारायण । २—सा=सर्पित ।

सोहति है उर में मणि यों जनु ।

जानकी को अनुरागि रह्यो मनु ॥ १६१ ॥

[दोहा]

...हत जनरत^१ रामधर, देखत जिनको भाग ।
आइ गयो ऊपर मनो, अन्तर को अनुराग ॥ १६२ ॥

[पद्धटिका छन्द]

शुभ मोतिन की दुलरी सुदेश ।

जनु वेदन के अन्तर सुवेश ।

गजमोतिन की माला विशाल ।

मन मानहुँ सन्तन के मराल ॥ १६३ ॥

[विशेषक छन्द]

श्याम दुवौ पग लाल लसै द्युति यों तल की ।

मानहुँ सेवति ज्योति गिरा यमुनाजल की ।

पाटु जटी अति श्वेत सो हीरन की अवली ।

देवनदी कन मानहुँ सेवत भाँति भली ॥ १६४ ॥

[दोहा]

को वरणै रघुनाथ छवि, केशव बुद्धि उदार ।

जाकी किरपा शोभिजति, शोभालय संसार ॥ १६५ ॥

सीता का रूप वर्णन

[दंडक]

को है दमयन्ती इन्दुमती रति राति दिन,
 होहिँ न छवीली छिये इन जो शृंगारिये ।
 केशव तजात जलजात जातवेद ओप, ^{रु. १०}
 जातरूप यापुरो विरुप सो निहारिये ।
 मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
 चन्द धरुप अनुरूपके विचारिये ।
 सीता जू के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
 रूप ही के रूपक तौ धारि धारि डारिये ॥ १६६ ॥

[गीतिका छन्द]

श्री शोभिजै सखि सुन्दरी जनु दामिनो धपु मंडिके ।
 धन श्याम को जनु सेवहीं जड मेघ ओघन छंडिके ॥
 एक अंग चर्चित चारु नन्दन चन्द्रिका तजि चन्द को ।
 जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनंदकंदको ॥ १६७ ॥
 मुख एक है नत लोकलोचन लोल लोचन को हरे ।
 जनु जानकी संग शोभिजै शुभ लाज देहम को धरे ॥
 तहँ एक फूलन के विभूषण एक मोतिन के किये ।
 जनु क्षीरसागर देवता तन क्षीर छीटनि को छिये ॥ १६८ ॥

[सोरठा] ^{रु. १० दे. १०}

पहिरे धसन सुरंग, पायक युत स्वाहा मनो ।
 सहज सुगन्धित अंग, मानो देवी मलय की ॥ १६९ ॥

दायज वर्णन

[चामर छंद]

मत्त दन्तिराज राजि वाजिराज राजि कै ।
हेम हीर मुक्त चीर चाह साज साजि कै ।
वेप वेप वाहिनी अशेष वस्तु लोधियो ।
दाइजो विदेहराज भांति भांति को दियो ॥ १७० ॥
वख भौन स्यो^१ वितान आसने बिछावने ।
अख शख अंगत्राण भाजनादि को मने ।
दासि दास वासि^२ वास^३ राम पाट के कियो ।
दाइजो^४ विदेहराज भांति भांति को दियो ॥ १७१ ॥

परशुराम संवाद

[दोहा]

विश्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुँचाइ ।
मिले आगिली फौज को, परशुराम अकुलाइ ॥ १७२ ॥

[चंचरी छन्द]

मत्त दन्ति अमत्त होगये देखि देखि न गजहीं ।
और और सुदेश केशव दुन्दुभी नहिं बज्जहीं ॥
डारि डारि हथियार शरज्ज जीव लै लै भज्जहीं ।
फाटि कै तनत्राण एकै नारि वेपन लज्जहीं ॥ १७३ ॥

१—स्यो=सहित । २—वासि=सुगंध से सुवासित करके । ३—वास=बस । ४—दाइजो=दहेज ।

(३८)

[दोहा]

वामदेव ऋषि सों कछो, परशुराम रणवीर
परशुराम-महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलवीर ॥ १७३ ॥

वामदेव-महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज ।

कहतहीं, समुझेउ रावण राज ॥ १७४ ॥

[चन्द्रकला छन्द]

परशुराम—घर धारण-शिखीन अशेष समुद्रहि,

सोधि सखा सुख ही तरिहीं ।

पुनि लंकहि श्रौंष्टि कलंकित कै,

फिरि पंक कनकहि को भरिहीं ।

मल मंजि कै राख सुखै^१ करिकै,

दुख दीरघ देवन को हरिहीं ॥

शितकंड के कंडन को कहुला,

दशकंड के कंडन को करिहीं ॥ १७६ ॥

[सयुता छन्द]

परशुराम—यह कौन को दल देखिये ।

वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिये ॥

परशुराम—कहि कौन राम न जानियो ।

वामदेव—शर ताड़का जिन मारियो ॥ १७७ ॥

१—सुखै=सदम हो भे ।

[विजय छन्द]

परशुराम—ताड़का संहारी तिय न विचारो
कौन बड़ाई ताहि हने ॥

वामदेव—मारीच हुते सँग प्रबल सकल खल
शर सुबाहु काहू न गने ॥
करि क्रतु^१ रखवारो गुरु सुखकारी
गौतम की तिय शुद्ध करी ।
जिन रघुकुल मंड्यो हरधनु खंड्यो
सोय स्वयंवर मांझ वरी ॥ १७० ॥

परशुराम—

[दोहा]

हर हू होतो दंड द्वै, धनुष चढ़ावत कष्ट ।

देखो महिमा काल की, कियो सो नरशिशु नष्ट ॥१७१॥

[विजय छंद]

वोरों सबै रघुवंश कुठार को धार में वारन वाजि सरत्थहिं ।
बाण को वायु उड़ाइ कै ^{सुखकारी} लेखन लक्ष करों अरिहा समरत्थहिं ।
रामहिं वाम समेत पठै वन कोष के भार में भुंजौं भरत्थहिं ।
जो धनुहाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दशरत्थहिं ॥१७०॥

[दोहा]

राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे वेगि दौ ।

गहे भरत को हाथ, आवत राम विलोकियो ॥ १७१ ॥

[दंडक छन्द]

परशुराम—अमल सजल घनश्याम वपु केशोदास
 चंद्रद्व ते चारु मुख सुधमा को ग्रामहै ।
 कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि
 सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नामहै ।
 बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुण
 मेरो मन मोहियत ऐसो एक याम है ।
 वैर मान धामदेव को धनुष तोरो ~~म~~
 जानत हों बीसविसे राम वेप काम है ॥ १८२ ॥

५

[गीतिका छन्द]

भरत-कुश मुद्रिका समिधें सुवा कुश श्री कमंडल को लिये ।
 कर्मूल शर धनु तर्कसी भृगुलात सी दर्यौ हिये ॥
 धनु बाण तिद कुडार केशव मेधला मृग चर्म सों ।
 रघुवीर को यह देखिये रसवीर सास्त्रिय धर्मसों ॥ १८३ ॥

[नाराच छन्द]

राम—प्रचंड हैहयाधिराज -दंडमान जानिये ।
 अचंड कीर्ति होय भूमि देयमान मानिये ॥
 अदेव देव जेय भीन रत्नमान लेखिये ।
 अमेय तेज भर्गभक्त मार्गवेश देखिये ॥ १८४ ॥

परशुराम—सुनि रामचन्द्र कुमार । मन धचन कीर्ति उदार ॥

राम-भृगुवंश के अयतंश । मनवृष्टि है क्यहि अंश ॥ १८५ ॥

परशुराम— [मदिरा छन्द]

तेरि शरासन शंकर को शुभ सीय स्वयंवर मांझ वरी ।

ताते बख्यो अभिमान महा मन मेरीयो नेक न शंक करी ॥

१। राम—सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरै तुमहूं धौं कहे ।

२। वाहु दै दोड कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहो ॥१२६॥

[कुंडलिया]

१. -टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोष ।

त्यो अय हर के धनुष को हम पर कीजत रोष ।

हम पर कीजत रोष कालगति जानि न जाई ।

होनहार है रहै मिटै मेरी न मिटाई ।

होनहार है रहै मोह मद सब को छूटै ।

होइ तिनूका वज्र वज्र तिनूका है टूटै ॥१२७॥

[विजय छन्द]

परशुराम—केशव हैहय राज को मांस

हलाहल कौरन खाइ लियो रे ।

२। तालगि मेद महीपन को -

घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे ।

खीर^१ षडानन को मद केशव

सो पल में करि पान लियो रे ।

तौलों नहीं सुख जौ लहुं तू

रघुवंश को शान सुधा न पियो रे ॥ १२८ ॥

[तंत्री छन्द]

भरत—बोलत कैसे भृगुपति सुनिये
सो कहिये तन मन यनि आयी ॥
) आदि बड़े ही बड़पन राखी
जाते तुम सब जग यश पावौ ॥
चन्दनहं मैं अति तन घसिये
आगि उठै यह गुनि सब लीजै ।
हैहय मारे नृपति संहारे
सो यश लै किन युग युग जीजै ॥ १८६ ॥

[नाराच छन्द]

१-मली कही भरत्य तैं उठाय आगि अंग तैं ।
बढ़ाउ चोपि चाप आप बाण ले निपंग तैं ॥
प्रमाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै ।
रिक्काउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै ॥ १६० ॥

[सोरठा]

लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोप करि ।
राम—वरज्यो श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ॥ १६१ ॥

[दोहा]

भागवन्तन सों जीतिये, कयहुँ न कीने शक्ति ।
जीती एकै यात में, केशल कीने भक्ति ॥ १६२ ॥

हरिगीत छंद]

जब हयो हेहयराज इन विन क्षत्र क्षितिमण्डल कख्यो ।
 गिरिवेध पटमुख जीति तारक नंद को जब ज्यो हख्यो ॥
 सुत मैं न जायो राम सो यह कख्यो पर्वतनंदनी ।
 घह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जगवंदिनी ॥ १६३ ॥

[तोमर छन्द]

परशुराम-सुनु राम शील समुद्र । तव बंधु हैं अति चुद्र ।
 मम वाडवानल कोप । अँगु कियो चाहत लोप ॥ १६४ ॥

[दोषक छंद]

शत्रुघ्न-हौ भृगुनंद बली जग माहीं,
 राम बिदा करिये घर जाहीं,
 हौं तुमसों फिरि युद्धहि मांडौं
 क्षत्रिय वंश को वैर लै छांडौं ॥ १६५ ॥

[तोटक छंद]

यह घात सुनी भृगुनाथ जबै ।
 परशुराम-कहि रामहि लै घर जाहु अबै ॥
 इन पै जग जीवत जो बचिहौ ।
 रण हौं तुमसों फिरिकै रचिहौ ॥ १६६ ॥

[दोहा]

निज अपराधी क्यो हतौं, गुरुअपराधी छांडि ।
 ताते कठिन कुठार अब, रामहि सौं रण मांडि ॥ १६७ ॥

[विजय छंद]

भूतल के सब भूपन को मद
भोजन तो बहु भांति कियोई ।
मेद सों तारक नंद को मेद
पद्मपावरि^१ पान सिरायो हियोई ।
खोर पहानन को मद केशव
सो पल में धरि पान लियोई ॥
राम तिहारेद कंड को श्रोणित^२
पान को चाई कुठार कियोई ॥ १६८ ॥

[तोटक छन्द]

लदमण-जिनकोहि अनुग्रह वृद्धि करै ।
तिनको किमि निग्रह^३ चित्तपरै ॥
जिनको जग अच्युत शीश धरै ।^५
तिनको तन सुन्नत कौन करै ॥ १६९ ॥

[विशेषक छंद]

म-हाथ धरे हथियार सबै तुम शोभत है ।
मारनहारहि देखि कदा मन सोभत है ॥
हथिय के कुरत है किमि यैनन दीन रचौ ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीशु यचौ ॥ २०० ॥

१-पद्मपावरि=सिन्नरन । २-निग्रह=दह ।

लक्ष्मण—क्षत्रिय है गुरु लोगन के प्रतिपाल करै ।
भूलिहु तौ तिनके गुण औगुण जो न धरै ।
तौ हमको गुरुदोष नहीं अब एक रती ।
जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाइ हती ॥ २०१ ॥

[विजय छन्द]

परशुराम—लक्ष्मण के पुरिपान कियो
पुरुपारथ सो न कह्यो परई ।
वेप बनाइ कियो धनितान को
देखत केशव ह्यो हरई ।
कूर कुठार निहारि तजै फल
ताको यहै जो हियो जरई ।
आजु ते केवल तोको महाधिक
क्षत्रिन पै जो दया करई ॥ २०२ ॥

[गीतिका छन्द]

तव एक विंशति शेर मैं बिन क्षत्र की पृथिवी रची ।
बहु कुंड श्रोणित सों भरे पितु तर्पणादि किया सची ॥
उवरे जे क्षत्रिय जुद्र भूतल शोधि शोधि संहारि हैं ।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारि हैं ॥ २०३ ॥

[दोहा]

राम—भृगुकुल कमल दिनेश सुनि, ज्योति सकल संतार ।
क्यों चलिहै इन शिशुन पै, डारत हो यशभार ॥ २०४ ॥

(४६)

[खोटा]

परशुराम-राम सुबन्धु सँभारि, छोड़त हौ शर प्राणहर ।
हृथ्यारन डारि, हाथ समेतिन बेगि दे^१ ॥२०५३

[पद्यटिका छंद]

राम—मुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि ।
तप विशिष अशेषन की जो अग्नि ॥
सब विशिष छाँड़ि सहिहीं अखंड ।
हर धनुष कखो जिन खंड खंड ॥ २०६ ॥

[सबैया]

परशुराम—

हमारेन के तनत्राण विचारि विचारि विरंचि करे हैं ।
जल ब्राह्मण नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाव भरे हैं ॥
कहा करिहौ तिनको तुम घालक देय अदेय घरे हैं ।
धे के नंद तिहारे गुरु जिनते अपिबेष किये उषरे हैं ॥२०५३

[पद्यपद]

—भगन भयो हर धनुष शाल तुमको अब शालै ।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईश आसन ते चालै ॥
सकत लोक संहारहु शेष शिर ते धर डारै ।
सत सिंधु मिलि जाहि होहि सयही तम भारै ॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुड़ि जाहि
भृगुनंद सँभारु कुटार में कियो शरासन युक्त शर

१-वेगिये=संग्रहा में ।

[स्वागता छंद]

राम राम जब कोप कख्यो जू ।
लोक लोक भय भूरि भख्यो जू
वामदेव तब आपुन आये ।
राम देव दोऊ समुझाये ॥ २०६ ॥

[दोहा]

महादेव को देखि कै, दोऊ राम विरं
कीन्हों परम प्रणाम उनं, आशिय दियो अशो

[चतुष्पदी]

महादेव-भृगुनंदन सुनिये मन महँ गुनिये रघुनंदन । नदाया ।
निजु^१ ये अधिकारी सब सुखकारी सबही विधि संतोपी ।
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायो ।
आयुर्वल खूद्यो धनुष जो दूद्यो मैं तनमन सुख पायो २११

[पञ्चटिका छंद]

तुम अमल अनंत अनादि देव ।
नहिं वेद बखानत सकल भेव ॥
सब को समान नहिं बैर नेह ।
सब भक्तन कारन धरत देह ॥ २१२ ॥
अब आपनपौ पहिंचानि विप्र ।
सब करहु आगिलो काज क्षिप्र ॥

तब नारायण को धनुष जानि ।
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि ॥ २१३ ॥

[मोहनक छंद]

नारायण को धनुषाण लियो ।
पँच्यो हँसि देवन मोद कियो ॥
रघुनाथ कहेउ अथ काहि ह नो ।
त्रैलोक्य कँव्यो भय मान घनो ॥ २१४ ॥
दिग्देध दहे बहु घात धहे ।
भूकम्प भये गिरिराज ढहे ॥
आकाश विमान अमान छये ।
हा हा सयही यह शब्द रये ॥ २१५ ॥

[शशिवदना छंद]

परशुराम-जग गुरु जान्यो । त्रिभुवन मान्यो ॥
मम गति मारौ । हृदय बिचारौ ॥ २१६ ॥

[दोहा]

विषयो की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग ।
रामदेव त्यांहीं कियो, परशुराम गति भंग ॥ २१७ ॥

[चतुष्पदी छंद]

सुर पुर गति भानी शासनमानी भृगुपति को सुख भारो ।
आशिष रसभीने सब सुख दोने अथ दशकंडहि मारो ॥ २१८ ॥

(४६)

[दोहा]

सोचत सीतानाथ के, भृगुमुनि दोन्हीं लात ।

भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह वात ॥२१६॥

[सवैया]

ताड़का तारि सुवाहु सँहार कै गौतम नारि के पातक टारे ।

चाप हृत्यो हर को हँसि कै तव देव अदेव हुते सब हारे ॥

सीतहि व्याहि अभीत चल्यो गिरि गर्व चढे भृगुनंद उतारे ।

श्रीगरुडध्वज को धनु लै रघुनन्दन औधपुरी पगुधारे ॥ २२० ॥

अयोध्या आगमन

[सुमुखी छंद]

ब नगरी बहु शोभ रये । जहँ तहँ मंगल चार ठये ॥

बरणतहँकविराजवने । तन मन बुद्धि विवेक सने ॥ २२१ ॥

[मोटनक छंद]

ऊंची बहु वर्ण पताक लसैं । मानो पुर दीपति सी दरसैं ॥

देवी गण व्याम विमान लसैं । शोभै तिनके मुख अंचल सैं ॥२२२॥

[तामरस छंद]

घर घर घंटन के रव घाजैं । विच विच शंख जु भालरि साजैं ।

पटह पखाउजआवभूँ सोहैं । मिलि सहनाइन सेां मनमोहैं ॥२२३॥

[हीरक छंद]

सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पर यों बनी ।

मोहन गिरि भृंगन पर मानहुँ महि मोहनी ॥

भूपनगन भूपित तन भूरि चितन चोरहीं ।
देखति जनु रेखति तनु यान नयन कोरहीं ॥ २२४ ॥

[संदरी छंद]

उंकर शल चढ़ी मन मोहति ।

✓ सिद्धन की तनया जनु सोहति ॥

पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहुँ ।

रूपन ऊपर दीपति जानहुँ ॥ २२५ ॥

[विशेषक छंद]

एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे ।

✓ मोहति है मन मानहुँ चांदनि चंद धरे ॥

नेन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी ।

मानहुँ रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥ २२६ ॥

नील निचोलन को पहिरे एक चित्त हरे ।

मेघन की घुति मानहुँ दामिनि देह धरे ॥

एकन के तन सूक्ष्म सारि जराय जरी ।

सूर करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥ २२७ ॥

[तैटक छंद]

घरपै कुसुमावलि एकघनी ।

शुभ शोभन कामलता सी यनी ॥

घरपै फल फूलन लायक की ।

जनु हैं तरुणी रति नायक की ॥ २२८ ॥

[देहा]

भीर भये गज पर चढ़े, श्रीरघुनाथ विचारि ॥
तिनहि देखि घरणत सबै, नगर नागरी नारि ॥ २२६ ॥

[तोटक छंद]

तम पुंज लियो गहि भानु मनो ।
गिरि अंजन ऊपर सोम मनो ॥
मनमथ्य विराजत शोभ तरे^१ ।
| जनु भासत लोभहि दान करे ॥ २३० ॥

[मरहट्टा छंद]

आनंद प्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरा दौरी ।
आरती उतारै सरवस वारै अपनी अपनी पौरी ॥
पदि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष देसविशेषै ।
कुंकुम कर्पूरनि मृगमद चूरनि वर्षति वर्षा वेपै ॥ २३१ ॥

[आभीर छंद]

यहि विधि श्रीरघुनाथ । गहे भरत को हाथ ॥
पूजत लोग अपार । गये राज दरवार ॥ २३२ ॥
गये एकही वार । चारों राज कुमार ॥
सहित वधूनि सनेह । कोशल्या के गेह ॥ २३३ ॥

१—शोभतरे=शृंगार के नीचे । (पाठांतर) 'जनुराजत काम
सिंगार तरे' ।

(५२)

[त्रिभंगी छंद]

धाजे बहु धाजें तारनि साजें सुनि सुर लाजें दुख भाजें ।
नाचें नव नारी सुमन शृंगारी गति मनुहारी सुख साजें ।
धीनानि यजावें गीतनि गावें मुनिन रिक्तावें मन भावें ।
भूपण पट दीजें सय रस भीजें देखत जाजें छवि छायें ॥२३३॥

[सोरठा]

रघुपति पूरण चंद्र, देखि देखि सय सुख मटें ।
दिन दूने आनंद, ता दिन ते तेहि पुर बटें ॥ २३४ ॥

॥ इति धातकांड ॥

अयोध्या कांड रामवनगमनवर

[देहा]

रामचंद्र लक्ष्मण सहित, घर राखे दशरथ ।
विदा कियो ननसार ^१को, सँग शत्रुघ्न भरथ ॥ १ ॥

[तोटक छंद]

दशरथ महा मन मोद रये । तिन बोलि वशिष्ठहिं मंत्र लये ॥
वन एक कहो शुभ शोभरयो । हम चाहत रामहिं राज दयो ॥२॥
यह बात भरथ की मातु सुनी । पठऊं वन रामहिं बुद्धि गुनी ॥
तेहिं मंदिर में नृपसों विनयो । वर देहु हतो हमको जो दयो ॥३॥

नृप बात कही हँसि हेरि हियो ।

दशरथ--वर मांगि सुलोचनि में जो दियो ॥

कैकेयी--नृपता सुविशेष भरथ लहैं ।

वरपैं वन चौदह राम रहैं ॥ ४ ॥

[पद्धटिकाछंद]

यह बात लगी उर वज्र तूल ।

हिय फाट्यो ज्यों जीरण दुकूल ॥

उठि चले विपिन कहँ सुनत राम ।

तजि तात मात तिय बंधु धाम ॥ ५ ॥

कौशल्या और राम

[मैत्रिकदाम छंद]

गये तहँ राम जहाँ निज मात ।

राम--कही यह बात कि हैं बन जात ।

कहू जनि जी दुख पावहु माइ ।

सो देहु अशीप मिलीं फ़िरि आइ ॥ ६ ॥

कौशल्या--रहौ चुप है सुत क्यों बन जाहु ।

न देखि सकैं तिनके उर दाहु ।

| लगी अब बाप तुम्हारेहि याइ ।

| करैं उसटी विधि क्यों कहि जाइ ॥ ७ ॥

[ब्रह्मरूपक छंद]

राम--अप देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात ।

✓ राज बाप मोल लै करै जो दीह पोषि गात ॥

दास होइ पुत्र होइ शिष्य होइ कोइ माइ ।

शासना^१ न मानई तौ कोटि जन्म नरक जाइ ॥ = ॥

[हरनी छंद]

कौशल्या-मोहिं चली धन संग लियै । पुत्र तुम्हें हम देखि जियै ॥

औघपुरी महँ गाज परै । कै अब राज भरत्य करै ॥ ८ ॥

[तोमर छंद]

राम-तुम क्यों चलो बन आहु । जिन शीघ्र राजन राहु ॥

जिय जानिये पति देव । करि सर्वभातिन सेव ॥ १० ॥

१-शासना=प्राज्ञा ।

पति देइ जो अति दुःख । मन मानि लीजै सुख ॥
सब जक्त^१ जानि अमित्र । पति जानि केवल मित्र ॥ ११ ॥

[अमृतगति छंद]

नित पति पंथहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ।
तन मन सेवहु पति को । तब लहिये शुभ गति को ॥ १२ ॥

[स्वागता छंद]

योग याग व्रत आदि जो कीजै ।
न्हान गानगुन^२ दान जो दीजै ॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा ।
होहि एक फल कै पति सेवा ॥ १३ ॥
तात मातु जन सोदर जानौं ।
देवर जेठ सगे सो बखानौं ॥
पुत्र पुत्रसुत श्री छवि छाई ।
है विहीन भरता दुख दाई ॥ १४ ॥

[कुंडलिया]

नारी तजै न आपनो, सपने हूं भरतार ।
पंगु गुंग धौरा बधिर, अंध अनाथ अपार ॥
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी ।
बालक पंडु कुरूप सदा कुदचन जड़ योगी ॥
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी ।
अधम अभागी कुदिल कुपति पति तजै न नारी ॥ १५ ॥

[पंकजवाटिका छंद]

मारि तजै न मरे भरतारहिं । ता संग सहति धनंजय^१ भारहिं ॥
जो फेहं करतार जिआवत । ती ताको यह बात सुनावत ॥१६॥

[निशिपालिका छंद]

गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं ।
तप्त नहिं खाइ जल शीत नहिं पीवहीं ।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं ।
शीत जल न्हाइ नहिं उष्ण जल जोवहीं ॥ १७ ॥
खाय मधुरान्न नहिं पाय पनही धरै ।
काय मन वाच सब धर्म करिबो करै ।
कृच्छ्र उपवास^२ सब इंद्रियनि जीतहीं ।
पुत्रशिपलीन तन जौलगि अतीतहीं^३ ॥ १८ ॥

[दोहा]

पति दिन पिनु पर तनु तज्यो, सती साखि दै देव ।
लोक लोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥ १९ ॥
मनसा घाचा कर्मणा, हम सेां छाँड़े नेहु ।
राजा को विपदा परी, तुम तिनकी सुधि लेहु ॥ २० ॥

^१धनंजय=अग्नि । ^२—कृच्छ्र उपवास=खंदापण्य मत । ^३—अतीता मरे, शत्रु को मातहों ।

सीता प्रति राम का उपदेश

[पद्मटिका छंद]

उठि रामचन्द्र लक्ष्मण समेत ।
तब गये जनक तनया निकेत ॥
राम—सुनु राजपुत्रिके एक बात ।
हम वन पठये हैं नृपति तात ॥ २१ ॥
तुम जननि सेव कहँ रहहु वाम ।
कै जाहु आजुही जनक धाम ॥
सुनु चन्द्रवदनि गजगमनि ऐनि ।
मन रुचै सो कीजै जलजनैनि ॥ २२ ॥

[नाराच छंद]

सीता—न हौं रहैं न जाहुँजू विदेह धाम को अबै ।
कही जो बात मातु ये सो आजु मैं सुनी सबै ॥
लगे छुधाहि मा भली विपत्ति मांझ नारिये ।
पियास त्रास नीर वीर युद्धमें समहारिये ॥ २३ ॥

[सुप्रिया छंद]

लक्ष्मण—वन महँ विकट विविध दुख सुनिये ।
गिरि गहवर मंग श्रगमहि गुनिये ॥
कहुं अहि हरि कहुं निशिचर चरहीं ।
कहुं दव दहन दुसह दुख दहहीं ॥ २४ ॥

[दंडक]

सीता—केशोदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास
दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै ।

(५८)

वायु को वहन दिन दाया को दहन यड़ी
याड़या अनल ज्वाल जाल में रखो परे ।
जीरन जनम जात जोर जुर^१ घोर पीर
पूरण प्रकट परिताप क्यों कछो परे ।
सहिहीं तपन ताप पति के प्रताप रघु-
धीर को विरह धीर मोसें न सछो परे ॥ २५ ॥

लक्ष्मण प्रति राम का उपदेश

[विशेषक छंद]

राम-धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेव करो ।
मातनि के सुनि तात सो दीरघ दुःख हरी ॥
श्राह भरत्य कहा धीं करे जिय भाय गुनी ।
जो दुख देई तो लै उरगी^२ यह मात सुनी ॥ २६ ॥

[दोहा]

लक्ष्मण-शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ ।
पेसी कैसे बूझिये घर सेयक बन नाथ ॥ २७ ॥

बनयात्रा

[हुतधिलंबित छंद]

विपिन मारग राम धिराजहीं ।
मुखद सुन्दरि सोदर चाजहीं ॥
विविध धीफल सिद्धि मनो फल्यो ।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो ॥ २८ ॥

— सुर=स्वर, १ उरगी=संगीकार करो, सरो ।

(५६)

[देहा]

राम चलत सब पुर चल्यो, जहँ तहँ सहित उछाह ।
मनो भगीरथ पथ चल्यो, भागीरथी प्रवाह ॥ २६ ॥

[चंचला छंद]

रामचन्द्र धाम ते चले सुने जवै नृपाल ।
वात को कहै सुनै सो है गये महा विहाल ॥
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो द्युलोक जाइ ।
गेह^१ चूरि ज्यों चकोर चंद्रमें मिलै उड़ाइ ॥ ३० ॥

[चंचरी छंद]

कौनहौ कित ते चले कित जात हौ केहि कामजू ।
कौनकी दुहिता बहू कहि कौन की यह वामजू ॥
एक गाँउँ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानिये ।
देश के परदेश के किधौं पंथ की पहिचानि ये ॥ ३१ ॥

[जगमोहन दंडक]

किधौं यह राजपुत्री बरहीं बखो है किधौं,
उपदि^२ बखो है यहि शोभा अभिरत हौ ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केशोदास
जात तपोवन शिव बेर सुमिरत हौ ।
किधौं मुनि शापहत किधौं ब्रह्मदोषरत
किधौं सिद्धियुत सिद्ध परम विरत हौ ।

१-गेह=पिंजड़ा । २-उपदि=गुरुजन की इच्छा के विरुद्ध अपनी इच्छा से ।

किधीं कोऊ ठग हो ठगोरी लीन्हे किधीं तुम
हरि हर श्री हो शिवा चाहत फिरत हो ॥ ३२ ॥

[मत्त-मातंग-लीला-करन दंडक]

मेघ मंदाकिनी^१ चाय सौदामिनी
रूप रूरे लसैं देह धारी मनो ।

भूरि भागीरथी भारती हंसजा
अंश के हँ मनो भाग भारे मनो ॥

देवराजा लिये देवरानी मनो
पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये ।

पत्त दू संधि संध्या संधी ही मनो
लक्षि ये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिये ॥ ३३ ॥

[अनंगशेखर दंडक]

तड़ाग नीर हीन ते सनीर होत केशोदास
पुंडरीक भुंड मौर मंडलीन मंडही ।

तमाल बल्लरी समेति सुखि सुखि के रहे
ते बाग फूलि फूलि के समूल शूल खंडही ॥

चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत
हंस हंसिनी समेत शारिका सबै पढ़ें ।

जहीं जहीं विराम लेत रामजू तहीं तहीं
अनेक भांति के अनेक भोग भाग सो बढें ॥ :

१—मंदाकिनी=माकारासंगी ।

[सुंदरी छंद]

घाम को राम समीप महाबल ।
सीतहि लागत है अति शीतल ॥
ज्यों घन संयुत दामिनि के तन ।
होत हैं पूष के करन ^१ भूपन ॥ ३५ ॥
मरग की रज तापित है अति ।
केशव सीतहि शीतल लागति ॥
ज्यों पद पङ्कज ऊपर पाँयनि ।
दौ जो चलै तेहि ते सुखदायनि ॥ ३६ ॥

[दोहा]

प्रति पुर औ प्रति ग्राम की, प्रति नगरन की नारि ।
सीताजू को देखि कै, वर्णत हैं सुखकारि ॥ ३७ ॥

[जगमोहन दंडक]

वासों सृग अङ्क कहैं तोसों सृगनैनी सब
वह सुधाधर तुहं सुधाधर मानिये ।
वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजेंचह
कलानिधि तुहं कलाकलित बखानिये ।
रत्नाकर के हैं दौऊ केशव प्रकाश कर
अंबर विलास कुचलय हित मानिये ।
वाके अति शीत कर तुहं सीता शीतकर
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिये ॥ ३८ ॥

कलित कलंक केतु केतु अरि सेत गात
 भोग योग को अयोग रोग ही को थलसां ॥
 पुन्योई को पूरन पै प्रति दिन पुनो पुनो
 क्षण क्षण क्षीण हात छीलर^१ को जलसां ।
 चंद्रसा जो धरणात रामचंद्र की दोहाई
 सोई मति मंद कवि केशव कुशल सां ।
 सुंदर सुवास अरु कोमल अमल अति
 सोताजू को मुख सखि केवल कमल सां ॥
 एके कहैं अमल कमल मुख सोताजू को
 एक कहैं चन्द्रसम आनंद को कंद री ।
 होइ जो कमल तौ रयनि में न सकुचै री
 चंद जो तौ वासर न होइ छुतिमंद री ।
 ॥ वासर ही कमल रजनि ही में चंद्र मुख
 वासर हू रजनि विराजै जगवंद री ।
 देखे मुख भायै अन देखेई कमल चंद
 ताते मुख मुर्व सखी कमली न चंद री^२ ॥ ४० ॥

[देहा ।

गोतानयन चकोर सखि, रवियंशी रघुनाथ ।
 रामचंद्र सिय कमल मुख, भलो धन्यो है साथ ॥ ४१ ॥

१—छीलर=बुझ, झंझुती । २—ताते.....चंद री=इससे इस मुखके
 समान यहो मुख है, कमल और चंद्र इसके समान नहीं है ।

[विजय छन्द]

बहु वाग तड़ाग तरंगनि तोर
तमाल की छांह विलोकि भली ।
घटिका यक बैठत हैं सुख पाय
विछाय तहां कुश काश थलो ।
मग को श्रम श्रीपति दुरि करैं
सिय के शुभ वाकल अंचल सों ।
श्रम तेऊ हरैं तिन को कहि केशव
चंचल चारु दृगंचल सों ॥ ४२ ॥

[सोरठा]

श्रीरघुवर के इष्ट, अश्रु वलित सीता नयन ।
सांची करी अष्टष्ट, भूँठी उपमा मीन की ॥ ४३ ॥

[दोहा]

मारग यों रघुनाथ जू, दुख सुख सबही देत ।
चित्रकूट पर्वत गये, सोदर सिया समेत ॥ ४४ ॥

भरत का आना

[दोषक छंद]

आनि भरत पुरी अवलोकी ।
स्थावर जंगम जीव सशोकी ॥
भाट नहीं विरदावलि साजैं ।
कंजर गाजैं न दुंदुभि बाजैं ॥ ४५ ॥

राज समा न विलोकिय कोऊ ।

शोक गहै तय साँदर दोऊ ॥

मंदिर मातु विलोकि अकेली ।

ज्यों बिन वृद्ध विराजति बेली ॥ ४६ ॥

[तोटक छंद]

तब दीरघ देखि प्रणाम कियो ।

उठि कै उन कंठ लगाइ लियो ॥

न पियो जल संभ्रम भूलि रहे ।

तब मातु सों बिन भरत कह्ये ॥ ४७ ॥

भरत केकयी का प्रश्नोत्तर

[विजया छंद]

मातु कहां नृप, नात गये सुर लोकहि क्यों, मुन शोक लये ।
इत कौन सुराम, कहां हैं अर्ध, यन लक्ष्मण सीय समेत गये ।
न काज कहा कहि, केवल मो सुख, नाकों कहा सुख यामें भये ।
मको प्रमुता धिक तोकों, कहा अपराध बिन, सिगरेई हये ॥ ४८ ॥

[ब्रौंहा]

भर्ता सुत विद्वंपिनी, मयही को दुरदाइ ।

यह कहि देखे भरत तय, कौशल्या के पाइ ॥ ४९ ॥

भरत कौशल्या घाती

[तोटक छंद]

तय पावन जाइ भरत परे ।

उन भेंटि उठाइ कै अंक मरे ॥

(६५)

शिर सृष्टि विलोकि बलाइ लई ।

सुत तो दिन या विपरीत भई ॥ ५० ॥

[तारक छंद]

भरत—सुनु मातु भई यह बात अनैसी ।

जु करी सुत भर्तृविनाशिनि जैसी ॥

यह बात भई अब जानत जाके ।

द्विज दोष परें सिगरे शिर ताके ॥ ५१ ॥

जिनके रघुनाथ विरोध वसैजू ।

मठधारिन के तिन पाप त्रसैजू ॥

रस राम रस्यो मन नाहिं न जाको ।

रण में नित होइ पराजय ताको ॥ ५२ ॥

कौशल्या—जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयाने ।

अति साधुचरित्र तुम्हें हम जाने ॥

सबको सब काल सदा सुखदाई ।

जिय जानति हौं सुत ज्यौं रघुराई ॥ ५३ ॥

दशरथ दाह

[चंचरी छंद]

हाइ हाइ जहां तहां सब है रही सिगरी पुरी ।

धाम धामनि सुन्दरी प्रगटीं सबै जे हुतीदुरी ॥

ले गये नृपनाथ को शय लोग धीसरयू तटी ।
राजपत्नि समेत पुत्रन विप्रलाप गढ़ी रटी^१ ॥ ५३ ॥

[सोमपात्री छंद]

करी अग्नि अर्चा । मिटी प्रेत चर्चा ॥
—बै राजधानी । भरै दीन बानी ॥ ५४ ॥

> [कुमारललिता छंद]

।क्रया भरत कीनी । वियोग रस मीनी ॥
सजी गति नयानी । मुकुंद पद लीनी ॥ ५६ ॥

भरत का चित्रकूट गमन

[तोटक छन्द]

पहिरे बकला सु जटा घरि कै ।
निज पाँयनि पंथ चले अरि कै ॥
तरि गंग गये गुह संग लिये ।
चित्रकूट विलोकत छाँड़ि दिये ॥ ५७ ॥

[मदनमोदक छन्द]

सब सारस हंस भये नग खेचर वारिद ज्यों बधुथापुनराजे ।
घन के नर घानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृगनाथक मजि ॥
/ तजि सिद्ध समाधि न केचव दीरघ दौरि दरौन में आसन साजे ।
| भूतल मूघर हाले अचानक आई भरतय के दुंदुभि बाजे ॥ ५८ ॥

१—विप्रलाप गढ़ी रटी=व्यलाप का समूह रटकर, बट्टन सा प्रकाप करके ।

(६७)

[दोहा]

रामचन्द्र लक्ष्मण सहित, शोभित सीता संग ।

केशवदास सहास उठि, चढ़े धरणिधर शृंग ॥ ५६ ॥

[मोहन छन्द]

लक्ष्मण—देखहु भरत चमू सजि आये ।

जानि अबल हमको उठि धाये ॥

हींसत हय बहु वारन गाजे ।

जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि बाजे ॥ ६० ॥

[तारक छंद]

गजराजनि ऊपर पाखर सोहैं । ^{भ्रूणें}

अति सुंदर शीश शिरोमणि मोहैं ॥

मणि घूंघुर घंटन के रव वाजैं ।

तड़िता युत मानहुँ वारिद गाजैं ॥ ६

[विजय छंद]

युद्धको आजु भरत्य चढ़े धुनि दुंदुभि की दशहूँ दिश धाई ।

प्रात चलो चतुरंग चमू वरणी सो न केशव कैसेहुँ जाई ॥

येां सबके तनवाननि में भूलकी अरुणोदय की अरुणाई ।

अंतर ते जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर आई ॥ ६२ ॥

[तोटक छंद]

उठिकै धर धारि अकाश चली ।

बहु चंचल वाजि खुरीन दली ।

भुव हालति जानि अकाश हिये ।
जनु धंभन टौरनि टौर किये ॥ ६३ ॥

[तारक छंद]

रण राजकुमार अरुभाहिगे जू ।
अतिसम्मुख घायनि जूभाहिगे जू ॥
जनु टौरनि टौरनि भूमि नवीने ।
तिनके चढ़िये कहँ मारग फीने ॥ ६४ ॥

[तोटक छंद]

॥—रहिपूरि विमाननि प्योम थली ।
तिनको जनु टारन धूरि चलो ॥
परिपूरि अकाशहि धूरि रही ।
सुगयो मिटि सूर प्रकाश सही ॥ ६५ ॥

[दोहा]

अपने कुल को कलह क्यों, देखाहि रवि भगवंत ।
यहै जानि अंतर कियो, मानो मही अनंत ॥ ६६ ॥

[तोटक छंद]

यहु तामह दीह पताक लसैं ।
जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसैं ॥
रसना किधौ काल कराल घनी ।
किधौ मीचु नचै चहुँ ओर बनी ॥ ६७ ॥

[दोहा]

देखिभरतकी चल ध्वजा, धूरिन में
युद्ध जुरन को मनहुँ प्रति योधन दं।ल एत ॥ ६५ ॥

लदमण का कोप

[दंडक छंद]

लदमण—मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु
मेटि पारौं दीरघ वचन निज गुरको ।
सीतानाथ सीता साथ बैठे देखि छत्रतर
यहि सुख शोषीं शोक सबही के उर को ॥
केशोदास सविलास बीस विसे घास होइ
कैकेयी के अंग अंग शोक पुत्रजुरको ॥
रघुराज जू को साज सकल छिड़ाइ लेउँ
भरतहि आजु राज देउँ प्रेत पुर को ॥६६ ॥

[दोहा]

एकराज में प्रगट जहँ, द्वै प्रभु केशवदास ॥
तहां बसत है रैनदिन, मूरतिवंत विनास ॥ ७० ॥

राम भरत मिलन

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब सबै सैना बहि थल रासी ।
मुनि जन लीन्हे सँग अभिलापी ॥
रघुपति के चरणन शिर नाये ।
उन हँसि कै गहि कंठ लगाये ॥ ७१ ॥

[दोषक छंद]

भरत—मातु सब मिलिये कहैं आई ।
 ज्यों सुत को सुरमी सुलवाई ॥
 लक्ष्मण स्यों उठिकै रघुवाई ।
 पाँवन जाय परे दोउ भार ॥ ७२ ॥
 मातनि फंड उठाय लगाये ।
 प्राण मनो मृत देहनि पाये ॥
 आई मिली तब सीय समागी ।
 देवर सासुन के पग लागी ॥ ७२ ॥

[तोमर छंद]

तब पूछियो रघुवाई । सुख है पिता तन भाई ॥
 तब पुत्र को मुख जोर । क्रम ते उठों सब रोई ॥ ७४ ॥

[दोषक छंद]

सासुन सों सब पर्वत धोये । जंगम को जड़ जीवहु रोये ॥
 सिद्ध षडू सिगरी सुनि आई । राजवधू सवैर समुझाई ॥ ७५ ॥

[मोहन छंद]

धरि चित्त धीर । गये गंग तीर ॥
 शुचि है शरीर । पितु तपि नीर ॥ ७६ ॥

[तारक छंद]

भरत—घर को चलिये अथ धीरघुवाई ।
 अनहीं तुम राज सदा सुखदाई ॥

यह बात कही जलसौं गल भीन्यौ ।

उठि सोदर पाइँ परे तब तीन्यो ॥ ७७ ॥

[दोषक छंद]

श्रीराम—राज दियो हमको बन रुरो ।

राज दियो तुमको अब पूरो ॥

सो हमहं तुमहं मिलि कीजै ।

बापको बोलु न नेकहु छीजै ॥ ७८ ॥

[दोहा]

राजा को अरु बाप को, वचन न मेट कोइ ।

जौ न मानिये भरत तौ, मारे को फल होइ ॥ ७९ ॥

[स्वागता छंद]

भरत—मद्यपानरत स्त्रीजित होई ।

सन्निपातयुत वानुल जोई ॥

देखि देखि तिनको सब भाग ।

तासु बात हति पाप न लागै । ८० ॥

ईश^१ ईश जगदीश^२ बखान्यो ।

वेदवाक्य बल ते पहिचान्यो ॥

ताहि मेटि हठिकै रहिहौ तौ

गंग^३ तीर तन को तजिहौ तौ ॥ ८१ ॥

[दोहा]

मौन गही यह बात कहि, छोंडो सबै विकल्प^४ ।

भरत जाह भागीरथी, तीर कख्यो संकल्प ॥ ८२ ॥

१—ईश=विष्णु । २—जगदीश=ब्रह्मा । ३—गंग=मंदाकिनी ।

४—विकल्प=विचार ।

मंदाकिनी कृत्न भरनोद्धोषन

[इन्द्रधजा छंद]

भागोरयो रुप अनूप कारी ।
 चंद्राननो लोचन कंज धारी ॥
 वाणी यमानी मुख तत्व सोर्यी ।
 रामानुज अनि प्रयोध बोध्या ॥ २३ ॥

[उपेन्द्रधजा छंद]

अनेक ब्रह्मादि न अंत पाये ।
 अनेकधा वंदन गांत गायो ॥
 तिन्हं न रामानुज बंधु जानी ।
 सुनी सुधी केवल ब्रह्म मानो ॥ २४ ॥

निजेच्छुधा भूतल देह धारी ।
 अधर्म संहारक धर्म चारी ॥
 चले दशग्रीवहि मारिये को ।
 तपी प्रती केवल पारिये को ॥ २५ ॥

उठां हठां होहु न काज कीजे ।
 कई कद्दु राम सो मानि लीजे ॥
 अदोय तेरी सुत मातु सोहै ।
 सो कौन माया इनको न मोहै ॥ २६ ॥

(७३)

[दोहा]

यह कहि कै भाग्यरथी, केशव मां भए।

भए कदां तत्र राम मां, वेहु पादुका भए ॥

भारत का लौटना

[छंदःश्रवण छंद]

बल बली पावन पादुका ले।

प्रदक्षिणा राम सिवाह को ले।

गये ते नंदीपुर वास ले।

सबधु श्रीरामहि चित्त दीना ॥

[दोहा]

केशव भरताहि आदि दे, सकल नगर के लोग।

वन समान घर घर बस, सकल विगत समीप ॥

॥ इति श्रवण छंदः ॥

मंदाकिनी कृत भरतोद्घोषन

[इन्द्रचक्रा छंद]

भागीरथी रूप अनूप कारी ।
चंद्राननी लोचन कंज धारी ॥
वाणी बक्षानी मुक्त तत्त्व सौध्या ।
रामानुजै आनि प्रयोध बोध्या ॥ २३ ॥

[उपेन्द्रचक्रा छंद]

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो ।
अनेकथा वेदन गीत गायो ॥
तिन्हें न रामानुज बंधु जानी ।
सुनीं सुधी केवल ब्रह्म मानी ॥ २४ ॥

निजेच्छया भूतल देह धारी ।
अधर्म संहारक धर्म चारी ॥
चलो दशग्रीवहि मारिये को ।
तपी मती केवल पारिवे को ॥ २५ ॥

उठो हठी होहु न काज कीजै ।
कहै कछू राम सो मानि लीजै ॥

✓ अदोष तेरी सुत मातु सोहै ।
सो कौन माया इनको न मोहै ॥ २६ ॥

(७३)

[दोहा]

यह कहि कै भागीरथी, केशव भई अदृष्ट ।

भरत कह्यो तव राम सों, देहु पादुका इष्ट ॥ ८७ ॥

भरत का लौटना

[उपेंद्रवज्रा छंद]

चले बली पावन पादुका लै ।

प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै ॥

गये ते नंदीपुर वास कीने ।

सबंधु श्रीरामहि चित्त दीनो ॥ ८८ ॥

[दोहा]

केशव भरतहि आदि दै, सकल नगर के लोग ।

वन समान घर घर बसे, सकल विगत संभोग ॥ ८९ ॥

॥ इति अयोध्या कांड ॥

अरण्य कांड

राम अत्रि मिलन

[भरतोद्भवा छंद]

चित्रकूट तब रामजू तज्यो ।
जाइ यज्ञथल अत्रि को भज्यो ।^१
राम लक्ष्मण समेत देखियो ।
आपनो सफल जन्म लेखियो ॥ १ ॥

[चन्द्रवर्त्म छंद]

स्नान दान तप जाप जो करियो ।
शोधि शोधि पन जो उर धरियो ।
योग याग हम जालगि रहियो ।
रामचन्द्र सब को फल लहियो ॥ २ ॥

[वंशस्था छंद]

अनेकधा पूजन अत्रिजू कखो ।
कृपालु है श्रीरघुनाथजू धखो^१ ॥
पतिव्रता देवि महर्षि की अहां ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहां ॥ ३ ॥

१—पत्नी-पहन की, स्वीकार की ।

सीता-अनुसूया-मिलन

[दोहा]

पतिव्रतन की देवता, अनसूया शुभ गात ।

सीताजू अवलोकियो, जरा सखी के साथ ॥ ४ ॥

[चतुष्पदी छंद]

शिर श्वेत घिराजै कीरति राजै जनु केशव तप-बल की ।

जनु बलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थलथल की ॥

रूपति शुभ ग्रीवा सब अंग सीवा देखत चित्त भुलाहीं ।

जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति या जग में कहु नाही ॥ ५ ॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

हरवाइ^१ जाय सिय पाइँ परी ।

ऋषि नारि सूँघि शिर गोद धरी ।

बहु अंगराग अंग अंग रये ।

बहु भाँति ताहि उपदेश दये ॥ ६ ॥

[स्रग्विनी छंद]

राम आगे चले मध्य सीता चली ।

बंधु पाछे भये सोम सोमै भली ॥

देखि देही सब कोटिधा कै भनो ।

जीव जीवेश के बीच माया मनो ॥ ७ ॥

विराघ धध

[मालती छंद]

विपिन विराघ बलिष्ठ देखियो ।
नृप तनया भयभीत लेखियो ॥
तब रघुनाथ बाण कै हयो ।
निज निर्वाण पेथ को टयो ॥ ८ ॥

[दोहा]

रघुनाथक सायक धरे, सकल लोक शिरमीर ।
गये कृपा करि भक्ति बश, ऋषि अगस्त्य के ठौर ॥ ९ ॥

अगस्त्य मिलन

[षसंततिलकाछंद]

श्रीराम लक्ष्मण अगस्त्य सनारि देख्यो ।
स्वाहा समेत शुभ पायक रूप लेख्यो ।
साष्टांग क्षिप्र अभियंदन जाइ कान्हों ॥
सानंद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हों ॥ १० ॥
बैठारि आसन सयै अभिलाष पूजे ।
सीता समेत रघुनाथ सथन्धु पूजे ॥
जाके निमित्त हम यज्ञ यज्ञ्यो^१ सो पायो ।
प्रह्लाडमंडन स्वरूप जो वेद गायो । ११ ॥

१—यज्ञ यज्ञ्यो=यज्ञ किये ।

[पद्मटिकाखंड]

ब्रह्मादि देव जय विनय कीन ।
 तट क्षीरसिंधु के परम दीन ॥
 तुम कह्यो देव अवतरहु जाइ ।
 सुत हों दशरथ को हेतु आइ ॥ १२ ॥
 हम तब ते मन आनन्द मानि ।
 मन चितवत तव आगमन जानि ।
 ह्यौ रहिजै करिजै देव फालु ।
 मम फूलि फल्यो तप वृत्त आलु ॥ १३ ॥

[पृथ्वी खंड]

श्रीराम—अगस्त्य ऋषिराज जू वचन एक मेरो सुनौ ।
 प्रशस्त सब भांति भूतल सुदेश जी में सुनौ ॥
 सनीर तरु खंड मंडित समृद्ध शोभा धरै ।
 तहां हम निवास की विमल पर्यशाला करै ॥ १४ ॥

अगस्त्य— [पद्मावतीखंड]

यद्यपि जग कर्त्ता पालक हर्त्ता परिपूरण वेदन गाये ।
 अति तदपि कृपा करि मानुष वपु धरि थल पूछ्युन हमसों आये ॥
 सुनि सुर वर नायक राजस-धायक राजहु मुनि जन यश लीजै ।
 शुभगोदावरि तट विशद पंचवट पर्यकुटी तहँ प्रभु कीजै ॥ १५ ॥

[दोहा]

केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर ।
 पर्यकुटी पावन करी, रामचन्द्र रण धीर ॥ १६ ॥

पंचवटी चम वर्णन

[त्रिमंगीछंद]

फल फूलन पूरे, तरु वर रुरे, कोकिल कुल कलरव धोलें ।

अति मत्त मयूरी, पियरस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलें ॥

सारो शुक पंडित, गुणगण मंडित, भावनि में अरथ बघानें ।

दंसे रघुनायक, सीय सहायक, मदनसरति मधु सब जानें ॥१७७॥

लक्ष्मण— [सवैया]

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी ।

निघटी रुचि मीचघटीह घटी जग जीव सुतीन की छूटी तटी ॥

अव शोध की बेरा कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी ॥

चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी गुण धूरजटी वनपञ्चवटी ॥ १८ ॥

शामत दंडक की रुचिबनी । मांतिन मांतिन सुन्दर घनी ॥

सेव बड़े नृप की जनु लसे । भीफल भूरि भाव जहँ बसे ॥१९॥

बेर भयानक सी अति लगे । अर्क समूह जहाँ जगमगे ॥

नेनन को बहुरूपन प्रसे । धीहरि कीजनु मूरतिलसे ॥ २० ॥

[दाघकछंद]

राम—पांडव की प्रतिमा सम लेखो ।

अर्जुन भीम^१ महामति देखो ॥

१—तटी=समाधि २—गटी=गडरी ३—भीम=ममत्वेतछ,

है सुभगा सम दीपति पूरी ।
सिंदुर की तिलकावलि रूरी ॥ २१ ॥
राजति है यह ज्यों कुलकन्या ।
धाइ विराजति है संग धन्या ॥
केलि थली जनु श्री गिरिजा की ।
शोभ धरे शितकंठ^१ प्रभा की ॥ २२ ॥

गोदावरी वर्णन

[मनहरनछंद]

अति निकट गोदावरी पाप संहारिणी ।
चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी ॥
अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिणी ।
वहु नयन देवेश शोभा मनोधारिणी ॥ २३ ॥

[दोधक छंद]

रीति मनो अविवेक को थापी ।
साधुन की गति पावत पापी ।
कंजज^२ की मति सी वड़ भागी ।
श्री हरिमंदिर^३ सौं अनुरागी ॥ २४ ॥

[अमृतगति छंद]

निपट पतिव्रत धरणी । जग जन के दुख हरणी ॥
निगम^४ सदा गति सुनिये । अगति महापति-गुनिये ॥ २५ ॥

१—शितकंठ=मयूर, महादेव २—कंजज=त्रया । ३—हरिमंदिर=
समुद्र, विष्णुस्थान ।

[दोहा] . . .

विषमय^१ यह गोदावरी, अमृतन को फल देति ।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥ २६ ॥

वन विलास वर्णन

[त्रिमंगी छंद]

जय जय धरि वीना प्रगट प्रवीना,
यहु गुण लीना सुख सीता ।
पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै,
विविध यजावै गुण गीता ।
तजि मति संसारी विपिन विहारी,
दुख सुखकारी धरि आवै ।
तय तय जगभूषण रिपुकुल दूषण,
सब को भूषण पहिरावै ॥ २७ ॥

[तोटक छंद]

क्यरी कुसुमालि सिखीन दर ।
गज कुंभनि हारनि शोभ मर ।
मुकुना शुक सारिक नाक रचे ।
कटि केहरि किंकिणि शोभसचे ॥ २८ ॥
दुलरी कल कोकिल कंठ धनी ।
मृग खंजन अंजन भाँति टनी ॥

१—विषमय (विष=जल) । अर्थात् जल से परिपूर्ण ।

नृप हंसनि नूपुर शोभ भिरी ।
कल हंसनि कंठनि कंठसिरी ॥ २६ ॥
मुख वासनि वासित कीन तत्रै ।
तृण गुल्म लता तरु शैल सबै ॥
जलहृ थलहृ यहि रीति रमै ।
वन जीव जहां तहँ संग भ्रमै ॥ ३० ॥

[दोहा]

सहज सुगंधि शरीर की, दिशि विदिशन श्रवगाहि ।
दूती ज्यों आई लिये, केशव शूर्पणखाहि ॥ ३१ ॥

शूर्पणखा राम संवाद

[मरहट्टा छंद]

यक दिन रघुनायक स्त्रीय सहायक रतिनायक अनुहारी ।
शुभ गोदावरि तट विमल पंचवट बैठे हुते मुरारी ॥
छवि देखत हीं मन मदन मध्यो तनु शूर्पणखा तेहि काल ।
अति सुन्दर तनु करि फछु धीरज धरि बोली वचन रसाल ॥३२॥
शूर्पणखा— [सचैया]

किन्नर हो नर रूप विचक्षण यच्छ कि स्वच्छ शरीरनि सोहौ ।
चित्त चकोर के चंद्र फिधौ मृग लोचन चारु विमाननि रोहौ ।
अंग धरे कि अनंग हो केशव अंगी अनेकन के मन मोहौ ।
वीर जट्टानि धरे धनुषाण लिये वनिता वन में तुम को हो ॥३३॥

१—रोहौ=मारोहण करते हो, सवार हो जाते हो ।

[मनोरमा छंद]

राम—हम हैं दशरथ्य महोपति के सुत ।
 शुभ राम सुलक्ष्मण नामन संयुत ॥
 यह शासन दै पठये नृप कानन ।
 मुनि पालहु मारहु राक्षस के गन ॥ ३४ ॥

शूर्पणखा—नृप रावण की भगिनी गनि मोकहैं ।
 जिन की ठकुराएति तीनहु लोकहैं ॥
 सुनिजै दुख मोचन पंकज लोचन ।
 अब मोहिं करो पतिनी मन रोचन ॥ ३५ ॥

[तामर छंद]

तब यों कछो ।हंसि राम । अब मोहिं जानि सखाम ॥
 तिय जाय लक्ष्मण देखि । सम रूप यौवन लेखि ॥ ३६ ॥

[दोषक छंद]

शूर्पणखा—राम सहोदर मो तन देखो ।
 रावण की भगिनी जिय लेखो ।
 राजकुमार रामो संग मेरे ।
 होहि सखै सुख संपति तेरे ॥ ३७ ॥

लक्ष्मण—यै प्रभु हौं जन जानि सदाई ।
 दासि भये महीं कौनि बहारी ॥
 जौ भजिये प्रभु ती प्रभुतारी ॥
 दासि भये उपहास सदाई ॥ ३८ ॥

(८३)

[मल्लिका छंद]

हास के विलास जानि । दीह मानखंड^१ मानि ॥

भक्षिवे को चित्त चाहि । सामुहे भई सियाहि ॥ ३६ ॥

[तोमर छंद]

तव रामचन्द्र प्रवीन । हँसि बंधु त्यों दृग दीन ॥

शुनि दुष्टता सह लोन । श्रुति नासिका विनु कीन ॥ ४० ॥

[दोहा]

शोन छिछि छूटत वदन, भीम भई तेहि काल ।

मानो कृत्या कुटिल युत, पावक ज्वाल कराल ॥ ४१ ॥

खरदूषण वध

[तोटक छंद]

गह शर्पणखा खरदूषण पै । सजि ल्याई तिन्हें जगभूषण पै ॥

शर एक अनेक ते दूरि किये । रवि के कर ज्यों तम पुंज पिये ॥ ४२ ॥

[मनोरमा छंद]

वृष के खरदूषण^२ ज्यों खरदूषण ।

तव दूरि किये रवि के कुल भूषण ॥

गदशत्रु^३ त्रिदोष ज्यों दूरि करै घर ।

त्रिशिरा शिर त्यों रघुनंदन के शर ॥ ४३ ॥

भजि शर्पणखा गह रावण पै तव ।

त्रिशिरा खरदूषण नाश कहे सब ॥

१—मानखंड=अपमान । २—खरदूषण=वृष । ३—गदशत्रु=वैद्य ।

तव शूर्पणखा मुख यात सबै मुनि ।
उठि रावण गो मारीच जहाँ मुनि ॥ ४४ ॥

रावण मारीच संवाद

[मनोरमा छंद]

रावण यात कही सिगरी त्यों ।
शूर्पणखाहि विरूप करी ज्यों ॥
रावण—एकहि राम अनेक सँहारे ।
दूषण स्यों त्रिशिरा खर मारे ॥ ४५ ॥
तू अथ होहि सहायक मेरो ।
हैं बहुते गुण मानिहैं तेरो ॥
जो हरि सीतहि ल्यावन पैहैं ।
ये भ्रमि शोकन ही मरि जैहैं ॥ ४६ ॥

मारीच—रामहिं मानुष कै जनि जानो ।
पूरण चौदह लोक बखानो ॥
जाहु जहाँ तिय लै सुन देख्यैं ।
हैं हरि को जलहं यल लेख्यैं ॥ ४७ ॥

[सुन्दरीछंद]

रावण—तू अथ मोहि सिखावत है शठ ।
मैं यश अक कियो हठ ही हठ ॥
वेगि चलै अथ देहि न ऊतर ।
देव सबै जन एक नहीं हर ॥ ४८ ॥

(८५)

[दोहा]

जांचि चल्यो मारीच मन, हरण दुहं विधि आसु ॥
रावण के कर नरक है; हरि कर हरिपुर वासु ॥ ४६ ॥

सीताराम मंत्रणा

[सुंदरी छंद]

राम—राज सुता इक मंत्र सुनो अब ।
चाहत हौं भुव भार हरेउ सब ॥
पावक में निज देहहिं राखहु ।
छाय शरीर मृगै अभिलापहु ॥ ५० ॥

[चामरछंद]

आइयो कुरंग एक चारु हेमहीर को ।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर को ॥
राजपुत्रिका समीप साधु बंधु राखिकै ।
हाथ चाप बाण लै गये गिरीश नांखिकै ॥ ५१ ॥

मारीचवध

[दोहा]

रघुनायक जब हीं हन्यो, सायक शठ मारीच ।
हा लक्ष्मण यह कहि गिरेउ, श्रीपति के स्वर नीच ॥ ५२ ॥

[निशिपालिका छंद]

सीता—राजतनया तबहिं बोल सुनि यों कहेउ ।
आहु चलि देवर न जात हमपै रहेउ ॥

हेम मृग होहि नहिं रैनिचर जानिये ।

वीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनिये ॥ ५३ ॥

सक्षमण—शोच अति पोच उर मोच दुख दानिये ।

मानु यह पात अवदात^१ मम मानिये ॥

रैनिचर छन्न बहु भाँति अभिलापही ।

दीन स्वर राम कयहं न मुख भापही ॥ ५४ ॥

पक्षिराज ^{कुल} [चंचला छंद] ^{यम} यक्षराज प्रेतराज यानुधान ।

देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ॥

पर्यतारि अर्य छर्य सर्व्य सर्वथा बखानि ।

कोटि कोटि सुरे चन्द्र रामचन्द्र दास मानि ॥ ५५ ॥

[चामरद्वन्द]

राजपुत्रिका कष्टो सो और को कहै सुनै ।

कान मूँदि बार बार शीश घीसघा धुनै ॥

चापकीय^२ रेख छाँचि देव साखि दै चले ।

नांघिहँ ते मस्म होहिं जीव जे बुरे भले ॥ ५६ ॥

सीताहरण

छिद्र ताकि लुद्रराज लंकनाथ आइयो ।

भिक्षु जानि जानकी सो भीष को घेलाइयो ॥

शोच पोच मोचिके सकोच भीम घेप को ।

अंतरिक्षही करी ज्यों राहु चंद्ररेख को ॥ ५७ ॥

१—अवदात=सत्य, कपट रहित । २—चापकीय=पशु से बनार्थ दूर

[दण्डक छन्द]

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु फो,
 शिखा की धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
 चित्र की सी पुत्रिका की हरे वगहरे माहिं,
 शम्बर छोडाइ लई कामिनि की कामकी।
 पाखंड की श्रद्धा की मठेश वश एकादशी,
 लीन्ही कै श्वपचराज शाखा शुद्ध सामकी।
 केशव अष्ट साथ जीवजोति जैसी तैसी,
 लंकनाथ परी छाया जाया राम की ॥ ५८ ॥

सोता विलाप

[हरिलीलाछंद]

सोता-हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर।
 लंकाधिनाथ वश जानहुँ मोहि वीर ॥
 हा पुत्र लक्ष्मण छोडावहु वेगि मोहिं।
 मातंडवंश यश की सब लाज तोहिं ॥ ५९ ॥
 पत्नी जटायु यह बात सुनंत धाइ।
 रोक्यो तुरंत बलरावण दुष्ट जाइ ॥
 कीन्हो प्रचंड रथ छत्र ध्वजा विहीन।
 छोड्यो विपत्ति तब भो जब पक्षहीन ॥ ६० ॥

[संयुताछंद]

दशकंड सीतहि लैचल्यो। अति वृद्ध गीधहि यों दल्यो ॥
 चित जानकी अधकों कियो। हरि तीनिद्वै अबलोकियो ॥ ६१ ॥

पद पद्म की शुभ घुंघरी । मणिनील-हाटक सेां जरी ।
जुत उत्तरीय^१ विचारिकै । शुभ डारि दीन गँठारि कै ॥ ६२ ॥

[दोहा]

सीता के पद पद्म को, नूपुर पट जनि जानु ।
मनहुं कखो सुग्रीव |घर, राजथो प्रस्थानु ॥ ६३ ॥

राम-विलाप

[सवैया]

नेज देखों नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौनकहौअवहीं ॥
प्रति मोहित कै यन मांक गई सुर मारग में मृग माखो जहीं ॥२॥
हट्ट यात फलू तुम सेां कहि आई किधौं तेहि प्रास डेराह रही ॥
प्रवहै यह पर्णकुटी किधौं और किधौं बह लक्ष्मणहोरनहीं ॥६४॥

६ राम जटायु संवाद

[दोघक छन्द]

घोरज सेां अपना मन रोफयो ।
गीध जटायु पखो अवलोकयो ॥
द्युध्वजा रथ देखि कै बूझेड ।
गीध कहौ रण कौन सेां जूझेड ॥ ६५ ॥

जटायु—रावण लै गयो राघव सीता ।

हा रघुनाथ रटे शुभ गीता ॥ ७००

१—उत्तरीय=भौदनी ।

मैं विन छत्र ध्वजा रथ कीन्हों।

है गयो हैं बल पक्ष विहीनो ॥ ६६ ॥

राम—साधु जटायु सदा बड़ भागी।

तो मन मो वपु सेां अनुरागी ॥

छूट्यो शरीर सुनी यह वानी।

रामहि तब ज्योति समानी ॥ ६७ ॥

[तोटक छंद]

दिशि दक्षिण को करि दाह चले।

सरिता गिरि देखत वृक्ष भले ॥

वन अंध कबंध विलोकतहीं।

दोउ सोदर खैंच लिये तवहीं ॥ ६८ ॥

कबंध वध

जब खैंवेहि को जिय बुद्धि सुनी।

दुहुं बाणनि लै दोउ बाहिं हनी ॥

वहँ छाड़ि कै देह चल्यो जवहीं।

यह व्योम में वात कहाँ तवहीं ॥ ६९ ॥

[तोटक छंद]

पीछे मघवा मोंहिं शाप दई।

गंधर्व ते राक्षस देह भई ॥

फिरि कै मघवा सह युद्ध भयो।

उन क्रोध कै शीश में वज्र हयो ॥ ७० ॥

[दोहा]

गयो शीश गङ्गा में, पत्थो धरणि पर आय ।
 कछु करुणा जियमें भई, दीन्ही बाहु बढाय ॥ ७१ ॥
 बाहु दई द्वै कोश की, आवै तेहि गहि साउँ ।
 राम रूप सीता हरण, उधरहु गहन उपाउ ॥ ७२ ॥
 सुरसरि ते आगे चले, मिलि हँ कपि सुप्रीय ।
 देहँ सीता की खबरि, बाढ़ै मुख अति जीव ॥ ७३ ॥

विरहजन्य प्रलाप

[तोटक छंद]

सरिता एक केशव सोभ रई ।
 अवलोकि तहां चकवा चकई ॥
 उरमें सिय प्रीति समाइ रही ।
 तिन सों रघुनायक घात कही ॥ ७४ ॥
 अवलोकत हीं जयहीं जयहीं ।
 दुख होत तुम्हें तवहीं तवहीं ॥
 यह धैर न चित्त कछु धरिये ।
 सिय देहु यताइ छुपा करिये ॥ ७५ ॥
 शशि के अवलोकन दूरि किये ।
 जिनके मुख की छवि देखि जिये ।
 छत^१ चित्त चकोर कछुक धरी ।
 सिय देहु यताय सहाय करी ॥ ७६ ॥

कहि केशव याचक के अरि चंपक, शोक अशोक लिये हरि कै ।
 लखि केतक केतकि जाति गुलाव ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै ॥
 सुनि साधु तुम्हें हम वृक्षन आये रहे मन मौन कहा धरि कै ।
 सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय सो करुणा करुणा करिकै ॥७७॥

[नाराच छंद]

हिमांशु सूर सो लगे सो घात वज्र सो बहै ।
 दिशा लगे कृशानु ज्यों विलेप अंग को बहै ॥
 विशेषि कालराति सो कराल राति, मानिये ।
 वियोग सीय को न काल लोकहार जानिये ॥ ७८ ॥

राम शवरी मिलन

[पदटिका छंद]

यहि भाँति विलोके सकल ठौर ।
 गये शवरी पै दोउ देव मौर ॥
 लियो पादोदक त्यहि पद पखारि ।
 पुनि अर्घ्यादिक दीन्हें सुधारि ॥ ७९ ॥
 हर देत मंत्र जिनको विशाल ।
 शुभ काशी में पुनि मरण काल ॥
 ते आये मेरे धाम आज ।
 सब सफल करन जप तप समाज ॥ ८० ॥

फल भोजन को तेहि धरे आनि ।
भये यक्षपुरुष अति प्रीति मानि ॥
तिन रामवन्द्र लक्ष्मण स्वरूप ।
तव धरे चित्त जग जोति रूप ॥ ८१ ॥

[दोहा]

शयरी पायक पंथ तव, हरखि गई हरि लोक ।
वनन विलोकत हरि गये, पंपा तीर सशोक ॥ ८२ ॥

पंपासर वर्णन

[तोटक छंद]

अति सुन्दर शीतल शोभ यसै ।
जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै ॥
बहु पंकज पक्षि विराजत हैं ।
रघुनाथ विलोकत लाजत हैं ॥ ८३ ॥
सिगरी श्रुतु शोभित सुन्न जहीं ।
लहै प्रीपम पै न प्रवेश सही ॥
नय नीरज नीर तहाँ सरसैं ।
सिय के शुभ लोचन से दरसैं ॥ ८४ ॥

[विजय छंद]

सुन्दर सेत सरोवरह में करहाटक^१ हाटक^२ की छुति को है ।
चापर मौर भले मन रोचन लोक विलोचन की रचि रोहै ॥

१—करहाटक=कनक पुत्र के बीच की झररी । २—हाटक=तोना ।

देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै ।
केशव केशवराय मनो कमलासन^१ के शिर ऊपर सोहै ॥ ८५ ॥

लक्ष्मण- [संवैया]

मिलि चक्रिन^२ चंदन वात बहै अति मोहत न्यायन ही मतिको ।
मृगमित्र^३ विलोकत चित्त जरै लिये चन्द निशाचर पद्धति को ।
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सवै जिय जानै नहीं इनकी गति को ।
दुख देत तड़ाग तुम्हें न वनै कमलाकर है कमलाप्रति को ॥ ८६ ॥

॥ इति श्ररण्य कांड ॥

१—कमलासन=ब्रह्मा । २—चक्रिन=सर्प । ३—मृगमित्र=चंद्रमा ।

किष्किंधा कांड

[दोहा]

ऋष्यभूक पर्यंत गये, केशव श्रीरघुनाथ ।
देखे घानर पंच विभु, मानो दक्षिण हाथ ॥ १ ॥

[कुसुमविचित्रा छंद]

तव कपि राजा रघुपति देखे ।
मन नरनारायण सम लेखे ॥
द्विज वपु धरि तहँ हनुमत आये ।
बहु विधि आशिष दै मन भाये ॥ २ ॥

राम हनुमान संवाद

हनुमान-सव विधि रूरे घन महँ को है ।
तन मन सूरु मनमथ मोहै ।
शिरसि जटा चकला वपुधारी ।
हरिहर मानहुं विपिनविहारी ॥ ३ ॥
परम विपोगी सम रस भीने ।
तन मन एकै युग तन कीने ॥
तुम को है का लागि घन आये ।
अ्यहि कुल ही कौने पुनि जाये ॥ ४ ॥

(६५)

[चंर. ६]

राम—पुत्र श्री दशरथ के वन राज शासन आइयो ।
सीय सुन्दरि संग ही बिछुरी सो सोध न पाइयो ॥
राम लक्ष्मण नाम संयुत सूरवंश बखानिये ।
रावरे वन कौन हौ क्यहि काज क्यो पहिचानिये ॥५॥

[दोहा]

इनुमान-या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता सँग मंत्री चारि
वानर लई छंडाइ तिय, दीन्हो वालि निकारि ॥ ६ ॥

[दोधक छंद]

वा कहँ जो अपनो करि जानो ।
मारहु वालि विनै यह मानो ॥
राज देहु जो वाकी तिया को ।
तो हम देहि वताय सिया को ॥ ७ ॥

राम सुग्रीव भिताई

[दोहा]

उठे राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ ।
सीता जू के पट सहित, नृपुर दीन्हे आइ ॥ ८ ॥

[दंडक]

राम-पंजर की खंजरीट नैनन को किधौं मीन
मानस को केशोदास जलु है कि जाहू है । ९

प्रंग को कि अंगराग गेंडुआ^१ की गलसुर^२
 केधीं क्रोडि-जेव ही को उर को कि हार है ॥
 धन हमारो कामकेलि को कि ताडिये को
राजने^३ विचार को की चमर विचार है ।
 मन की जमनिका^४ की कंजमुख मंदिवे को
 जीताजू को उचरोय सब मुखसार है ।

[स्वागता छंद]

धानरेन्द्र तय यों हँसि योख्यो ।
 भीति भेद जिय को सब खोख्यो ॥
 अरु धारि परतक्ष करी जू ।
 रामचन्द्र हँसि याई धरी जू ॥ १० ॥
 सुर पुत्र तव जीवन जान्यो ।
 वालि जोर बहु भाँति खान्यो ॥
 नारि छीनि जेहि भाँति लई जू ।
 सो अशेष विनती विनई जू ॥ ११ ॥

सप्त ताल वेधन

एक धार शर एक हना जो ।
 सात ताल बलवंत गर्ना तो ॥
 रामचन्द्र हँसि धार चलायो ।
 ताल वेधि फिरि कै कर आयो ॥ १२ ॥

१—गेंडुआ=नक्रिया । २—गलसुर=गाल के नीचे लगाने की छेदी
 केरमल तरिया । ३—राजने=छेदा । ४—जमनिका=नरदा, कनाल ।

[तारक छंद]

यह अद्भुत कर्म और पै होई ।
सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई ॥
निकरी मन ते सिगरी दुचिताई ।
तुम सो प्रभु पाय सदा सुखदाई ॥ १३ ॥

[विजय छंद]

बावन को पद लोकन मापि ज्यों बावन के वपुमाँह सिधाये ।
केशव सूरसुता जल सिंधुहि पूरि कै सूरहि को पद पायो ॥
काम के वाण त्वचा सब वेधिकै काम पै आवत ज्यों जग गाये ।
राम को शायक सातहु तालनि वेधिकै रामहि के कर आये १४

[सोरठा]

जिन के नाम विलास, अखिल लोक वेधत पतित ।
तिनको केशव दास, सात ताल वेधन, कहा ॥ १५ ॥

वालि वध

[पद्यटिका छंद]

रवि पुत्र वालि सेाँ होत युद्ध ।
रघुनाथ भये मन माहँ क्रुद्ध ॥
शर एक हन्यो उर मित्र काम ।
तव भूमि गिखो कहि राम राम ॥ १६ ॥
कहु चेत भये तेहि बलनिधान ।
रघुनाथ बिलोके हाथ यान ॥

शुभधीर जटा शिर श्याम गात ।

धनमाल हिये उर विमलात ॥ १७ ॥

वालि—तुम आदि मध्य अवसान एक ।

जग मोहत ही वधु धरि अनेक ॥

तुम सदा शुद्ध सद्य को समान ।

कोहि हेतु हत्यो करणानिधान ॥ १८ ॥

राम—सुनि घासवसुत बुधि बल निधान ।

मैं शरणागत हित हते प्रान ॥

यह सांठो^१ लै कृष्णावतार ।

तय है ही तुम संसार पार ॥ १९ ॥

रघुवीर रंक ते राज फीन ।

शुवराज विरद अंगदहि दीन ॥

तय किष्किंधा तारा समेत ।

सुग्रीव गये अपने निकेत ॥ २० ॥

[दोहा]

कियो नृपति सुग्रीव हति, घालि बलो रणधीर ।

गये प्रवर्षण अद्रि को, लक्ष्मण श्री रघुवीर ॥ २१ ॥

प्रवर्षणगिरि वणन

[त्रिमंगी छंद]

देख्यो शुभ गिरिवर सकल सोम घर ।

फूल परन वहु फलनि फरे ॥

१—सांठो=बदला ।

सँग सरभञ्जु जन केशरि के गण ,
 मनहु धरणि सुग्रीव धरे ॥
 संग शिवा विराजै गज मुख गाजै ,
 परभृत^१ बोलै चित्त हरे ॥
 शिर शुभ चन्द्रकधर परम दिगंबर ,
 मानो हर अहिराज धरे ॥ २२ ॥

[तोमर छंद]

शिशु सो लसै सँग धाइ । वनमाल ज्यों सुरराइ ॥
 अहिराज सो यहि काल । बहु शीश शोभनि माल ॥ :

[स्वागता छन्द]

चंद्र मंद द्युति वासर देखो । भूमि हीन भुवपाल विशोपौ ॥
 मित्र देखि यह शोभत है यौं । राजसाज विनुसीतहि हौं ज्यौं ॥ २४ ॥

[दोहा]

तिनी पति विनु दीन अति, पति पतिनी विनु मंद ॥
 चंद्र विना ज्यों यामिनी, ज्यों विन यामिनि चंद्र ॥ २५ ॥

वर्षा वर्णन ॥

[स्वागता छन्द]

देखि राम वरपा ऋतु आई । रोम रोम बहुधा दुखदाई ॥
 आसपास तम की छवि छाई । राति दिवस कहु जानि न जाई ॥ २६ ॥

मंद मंद धुनि सो घन गाजें । तूर^१ तार जनु आवक बालें ।
 ✓ ठौर ठौर चपला चमकै यीं । इंद्र लोक तिय नाचति हें ज्योः

[मोहनक छन्द]

सोहैं घन श्यामल घोर घनैं । मोहैं तिनपैं चकपांति म
 शुंखावलि पी बहुधा जल सों । मानो तिनको उगिलै ब्रह्म सों ॥२॥
 शोभा अति शक्र शरासन में । नाना युति दीसति है घन में ।
 रत्नावलिसी दिवि द्वारभनो । वर्षांगम थांधिय देव मनो ॥२५॥

[तारक छन्द]

घन घोर घने दशह्रं दिशि छाये ।
 मधवा जनु सुरज पै चढ़ि आये ॥
 अपराध बिना क्षिति के तन ताये ।
 तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये ॥ ३० ॥
 अति गाजत घाजत दुंदुभि मानो ।
 निरघात सचै पधिपात बखानो ॥
 घनु है यह गौरमदाइनि^२ नाहीं ।
 शर जाल बहै जलधार वृथा हीं ॥ ३१ ॥
 भट चातक दादुर मोर न बोले ।
 चपला चमकै न फिरै रंग खोले ॥
 युतिवंतन को विपदा बहु कीन्हीं ।
 धरती कहैं चंद्रवधू^३ धरि क्षीन्हीं ॥ ३२ ॥

१—तूर=तागाड़ा । २—गौरमदाइनि=इंद्रधनुष । ३—चंद्रवधू=सीतादेव

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी ।
उर में हंस-चन्द्रकला सम दीसी ॥
वरपा न सुनें किलकै किल काली ।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली ॥ ३३ ॥

[वनाक्षरी]

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भुखन जराय जोति तड़ित रुलाई है ।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकारि है ॥ १ ॥
केशोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकूत सु हंसक सबद सुखदाई है ।
अंबर अलित मति मोहै नील कंठ जू फी,
कालिका कि वरखा हरखि हिय आई है ॥ २ ॥

[दोहा]

वर्णत केशध सकल कवि, विपम गाढ़ तम सृष्टि ।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, संतत मिथ्या दृष्टि ॥ ३५ ॥

[चंद्रकला छन्द]

कल हंस कलानिधि खंजन कंज कछु दिन केशव देखि जिये ।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये ॥
यहि काल कराल ते शोधि सबै हठिकै वरपा मिस दूरि किये ।
अब धौं विनप्राणप्रिया रहिहैं कहि कौनहितुअवलम्बिहिये ॥ ३६ ॥

(१०२)

शरद वर्णन

[दोहा]

धीते धर्या काल यों, आई शरद सुजाति ।

गये अँधारी होति ज्यों, चारु चांदनी राति ॥ ३७ ॥

[मोटनक छंद]

बंताबलि कुन्द समान गनो । चंद्रानन कुन्तल चौर बना ।

भीहैं धनु खंजन नैन मनो । राजीवनि ज्यों पद पानि मनो ॥ ३८ ॥

हाराबलि नीरज^१ हीय रमें । हैं लीन पयोधर अम्वर में ॥

पाटीर^२ जोन्हाइहि अंग धरे । हंसीगति केशव चिंच हरो ॥ ३९ ॥

। श्रीनारद की इउसै मति सी । होपै तमता अपकीरति सी ॥ ४० ॥

। मानौ पतिदेवन की रति को । सतमारगकी समुक्त गतिको ॥ ४० ॥

[दोहा]

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी, आई शरद सुजाति ।

मनहुँ जगावन को हमहि, धीते धर्या राति ॥ ४१ ॥

सुग्रीव पर क्रोध

✓

[कुंडलिया]

ताते नृप सुग्रीव पै, जैसे सत्वर तात ।

कदियो धचन बुझाई कै, कुशल न चाहो गात ॥

कुशल न चाहो गात बहत है घालिहि देखो ।

करहु न सीता शोध काम धरु राम न लेखो ॥

१—नीरज=माती । २—पाटीर=पंदन ।

राम न लेखो चित्त लही सुख संपति जाते ।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है ताते ॥ ४२ ॥

[दोहा]

लक्ष्मण किष्किंधा गये, वचन कहे करि क्रोध ।
तारा तब समुभाइयो, कीन्हों बहुत प्रबोध ॥ ४३ ॥

[दोषक छंद]

बोली लये हनुमान तवै जू ।
ल्यावहु वानर बोली सबै जू ॥
बार लगै न कहं बिरमाहीं ।
एक न कोउ रहै घर माहीं ॥ ४४ ॥

[त्रिभंगी छंद]

सुग्रीव सँघाती मुख दुति राती ,
केशव साथहि सूर नये ॥
आकाश विलासी सूरप्रकाशी ,
तब हीं वानर आइ गये ॥
दिशि दिशि अवगाहन सीतहि चाहन ,
यूथप यूथ सबै पठये ॥
नलनील ऋच्छुपति अंगद के संग ,
दक्षिण दिशि को विदा भये ॥ ४५ ॥

सीताखोजहित वानर सेना का प्रस्थान

[दोहा]

युधि विक्रम व्यवसाय युत, साधु समुक्ति रघुनाथ ।
पल अनंत हनुमंत के, मुँदरी दीन्हीं हाथ ॥ ४६ ॥

(१०४)

[हीरक छंद]

चण्ड चरण छरिड धरणि मंडि गगन धावही ।
तत्क्षण हँ दक्षिण दिशि लक्ष्य नहीं पावही ॥
धीर धरन वीर धरण सिंधु तटं सुभाषही ।
नाम परमधाम धरम राम करम गायही ॥ ४७ ॥

[अनुकूल छंद]

अंगद—सोय न पाई अघघ विनासी ।
होहु सबै सागरतटवासी ॥
जो धर जैये सकुच अनंता ।
मोहि न छोड़ै जनकनिहंता ॥ ४८ ॥

हनूमान—अंगद रत्ना रघुपति कीन्हों ।
सोघ न सीता जल थल लीन्हों ॥
आलस छांडों कृत उर आनों ।
होहु कृतग्री जनि शिखर मानों ॥ ४९ ॥

[दंडक]

अंगद—जोरण जटायु गीघ धन्य एक जिन रोकि,
रावण विरथ कीन्हों सहि निज प्राण हानि ॥
हुते हनुमंत फलवंत तहां पांचजन,
दीने हुते भूषण कद्रुक ^{रूप} जानि ॥
आरत पुकारत ही राम राम बार बार,
लीन्हों न छंडाए तुम सीता अति भीत मानि ॥

(१०५)

गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागै,
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ॥ ५० ॥

[दोहा]

सुनि संपाति सपत्न हैं, रामचरित सुख पाय ।
सीता लंका मांभ हैं, खगपति दर्ई वताय ॥ ५१ ॥

[दंडक]

हरि कैसो वाहन की विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को ॥
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधौ,
लक्षण को बाण छूट्यो रावण निशंक को ॥
गिरि गजगंड ते उड़ान्यो सुवरण अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को ॥
हवाई^१ सी छूटी केशोदास आसमान में,
कमान^२ कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥ ५२ ॥

॥ इति किष्किंधा कांड ॥

सुंदर कांड

हनुमान लंका गमन

[दोहा]

उदधि नाकपतिशत्रु^१ को, उदित जानि बलवंत ।
अंतरिक्ष ही लक्षि पद, अच्छु ह्युयो हनुमंत ॥ १ ॥
बाँच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि । शत्रु^२
लोलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कह फारि ॥ २ ॥

[तारक छंद]

कहु राति गये करि दंश दशा सी ।
पुर मांझ चले बनराजि विलासी ॥
जय ही हनुमंत चले तजि शंका ।
मग रॉकि रही तिय है तव लंका ॥ ३ ॥

हनुमान लंका संवाद

लंका—कहि मोहि उलंधि चले तुम को है ।
अति सूक्ष्म रूप धरे मन मोहै ॥
पठये फ्यहि कारण कौन चले है ।
सुर है किधौं कोऊ सुरेश भलेहै ॥ ४ ॥

१—नाकपतिशत्रु=मैनाक ।

हनूमान-हम चानर हैं रघुनाथ पठाये ।

तिनकी तरुणी श्रवलोकन आये ॥

लंका—हति मोहिं महामति भीतर-जैये ।

हनूमान-तरुणीहिं हते कबलों सुख पैये ॥ ५ ॥

लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ ।

हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ ॥

हनुमंत बली तेहि थापर मारी ।

तजि देह भई तव ही वर नारी ॥ ६ ॥

[चौपाई]

लंका—धनदपुरी हैं रावण लीन्ही ।

बहु विधि पापन के रस भीनी ॥

चतुरानन चित चिंतन कीन्हों ।

वरु करुणा करि मो कहँ दीन्हों ॥ ७ ॥

जब दशकंठ सिया हरि लैहें ।

हरि^१ हनुमंत विलोकन पेहें ॥

जब वह तोहि हतै तजि शंका ।

तव प्रभु होइ विभीषण लंका ॥ ८ ॥

चलन लगे जवही तव कीजो ।

मृतक शरीरहि पावक दीजो ॥

यह कहि जात भई वह नारी ।

सब नगरी हनुमंत निहारी ॥ ९ ॥

रावणशयनागार

तब हरि रावण सोधत देख्यो ।
 मणिमय पलका की छवि देख्यो ॥
 तहँ तछणी बहू भाँतिन गावँ ।
 बिच बिच आवभू घोन घजावँ ॥ १० ॥

{ मृतक चिता पर मानहु सोहँ ।
 चहुँ दिशि प्रेतबधू मन मोहँ ॥
 जहँ जहँ जाह तहाँ दुख दूनो ।
 सिय बिन है सिगरो घर सूनो ॥ ११ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

कहँ किन्नरी किन्नरी^१ लै बजावँ ।
 सुरी आसुरी बांसुरी गीत गावँ ॥
 कहु यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावँ ।
 नगी कन्यका पुत्रगी को नचावँ ॥ १२ ॥
 पियै एक हाला गुहे एक माला ।
 बनी एक बाला नचै चित्रशाला ॥
 कहँ कोकिला कोक की कारिका को ।
 पढ़ावँ सुआ लै शुकी शारिका को ॥ १३ ॥
 फिखो देखिकै राजशाला सभा को ।
 रह्यो रीभिकै वाटिका की प्रभा को ।

१—किन्नरी=तारंगी ।

फिखो ओर चाँहं चित शुद्ध गीता ।

विलोकी भली सिंसिपा मूल सीता ॥ १४ ॥

सीता दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी ।

मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी ॥

सदा रामनामै ररै दीन बानी ।

चहँ ओर हँ एक सी दुःखदानी ॥ १५ ॥

असी बुद्धि सी चित्त चितानि मानेन ।

किधौं जीभ दंतावली में बखाने ॥

किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी ।

कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी ॥ १६ ॥

किधौं जीव की जोति मायान लीनी ।

अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी ॥

मनो संवरखीन मैं काम वामा ।

हनूमान ऐसी लखी राम-रामा ॥ १७ ॥

तहाँ देव-द्वेषी दशग्रीव आये ।

सुन्यो देवि सीता महा दुःख पाये ॥

सवै अंग लै अंग ही में दुराये ।

अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहाये ॥ १८ ॥

रावण सीता संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि बीजे ।

इतो शोच तो राम काजे न फीजे ॥

(११०)

बसैं दंडकारण्य देखैं न कोऊ ।
जो देखैं महा बावरो होय सोऊ ॥ १६ ॥
कृतमी कुदाता कुकन्याहि चाहै ।
हित् नग्न मुंडीन ही को सदा है ॥
अनाथें सुन्यो मैं अनाथानुसारी ।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥ २० ॥
तुम्हें देवि दूपे हित् ताहि मानै ।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै ॥ २१ ॥
महानिगुंशी नाम ताको न लीजै ।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥ २१ ॥
अटेषी नृदेवीन की होहु रानी ।
करै सेव धानी मयीनी मृडानी ॥ २२ ॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं ।
सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावैं ॥ २२ ॥

[मालिनी छन्द]

सीता—तृण बिच दै धोली सीय गंभीर धानी ।
दशमुखशठ को तू कौन की राजधानी ॥
दशरथमुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै ।
निशिचर धपुरा तू क्यों न स्यों मुल नासै ॥ २३ ॥
अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी ।
खल खर शर धार क्यों सहै तिच्छ ताकी ॥

विडकन^१ घन घूरे भन्नि क्यों वाज जीवै ।
शिवशिर शशि श्री को राहु कैसे सो छीवै ॥ २४ ।
उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौलों अभागे ।
मम वचन विसर्पी^२ सर्प जौलों न लागे ।
विकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरो ।
निपुट मृतक तोकों रोप मारै न मेरो ॥ २५ ।

[दोहा]

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राक्षसिन बोलि ।
ज्यों समुझै समुझाहयो, युक्ति छुरी सों छोलि ॥ २

मुद्रिका प्रदान

[चामर छन्द]

देखि देखि कै अशोक राज पुत्रिका कह्यो ।
देहि मोहि आगि तैं जो अंग आगि है रह्यो ।
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई ।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥ २७ ॥

[तोमर छंद]

जय लगी सियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लपि तव ताहि । मणि जटित मुँदरो आहि ॥२॥
जव वांचि देख्यौ नाउ । मन पख्यो संभ्रम भाउ ॥
आबाल ते रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ॥ २६ ॥

बिहुरी सो कौन उपाउ । केहि आनियो भहि ठाउ ॥
 सुधि लहौ कौन उपाउँ । अब काहि बूमन जाउँ ॥ ३० ॥
 चहुँ ओर चितै सत्रास । अबलोकियो आकास ॥
 तहँ शाख बैठो नीटि^१ । तय पखो धानर डीटि ॥ ३१ ॥

सीता हनुमान संवाद

१/ तय कह्यो को तू आहि । सुर असुर मोतन चाहि ॥
 निपद के यत्न पक्ष विरूप । दशकंठ धानर रूप ॥ ३२ ॥
 कहि आपनो तू भेद । नतु चित्त उपजत खेद ॥
 कहि वेगि धानर पाप । नतु तोहि देहौं शाप ॥
 डरि वृत्त शाखा भूमि । कपि उतरि आयो भूमि ॥ ३३ ॥

[पद्धटिका छंद]

कर जोरि कह्यो हौं पवन पूत ।
 जिय जननि जानु रघुनाथ दूत ॥
 रघुनाथ कौन दशरथ्य नंद ।
 दशरथ्य कौन अज तनय चंद ॥ ३३ ॥
 केहि कारण पठये यहि निकेत ।
 निज देन लेन संदेश हेत ॥
 गुण रूप शील शोभा सुभाउ ।
 कहु रघुपति के लक्षण यताउ ॥ ३४ ॥
 अति यदपि सुमित्रा नंद भक्त ।
 अति सेवक हँ अति शूर शक्त ॥

१—नीटि=बड़ी मुरिकल से ।

अरु यदपि अनुज तीन्यो समान ।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥ ३५ ॥
ज्यों नारायण उर श्री वसंति ।
त्यो रघुपति उर कछु द्युति लसंति ॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप ।
सुर असुर न पूजैं राम रूप ॥ ३६ ॥

[निशिपालिका छंद]

सीता-मोहिं परतीति यहि भाँति नहि आवई ।
प्रोति कहि थौं सुनर वानरनि क्यो भई ॥
वात सब वणिं परतीति हरि त्यो दई ।
| आंसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥ ३७ ॥

[दोहा]

आंसु वरपि हियरे हरपि, सीता सुखद सुभाइ ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरणति है बहु भाइ ॥ ३८ ॥

मुद्रिका वर्णन

[पद्धटिका छन्द]

यह सूरकिरण तम दुःखहारि ।
शशिकला किधौं उर शीतकारि ॥
कल कीरति सी शुभ सहित नाम ।
कै राज्यश्री यह तजो राम ॥ ३९ ॥
कै नारायण उर सम लसंति ।
शुभ अंकन ऊपर भी वसंति ॥

(११४)

धर विद्या सी आनंद दानि ।
युत अष्टापद^१ मनु शिवा मानि ॥ ४० ॥
जनु माया अच्युत सहित देखि ।
कै पत्रो ; निश्चयदानि लेखि ॥
प्रिय प्रतीहारनी सी निहारि ।
श्री रामोजय उच्चारकारि ॥ ४१ ॥
पिय पठई मानो सखि सुजान ।
जगभूषण को भूषण निधान ॥ ४२ ॥
निजु^२ आई हमको सीख देन ।
यह किधौं हमारो मरम लेन ॥ ४२ ॥

[दोहा]

सुखदा शिष्यदा अर्थदा, यशदा रसदातारि ।
रामचन्द्र को मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ॥ ४३ ॥
बहु धरणा सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान ।
जग भाग्य दृशावनी, सूरज किरण समान ॥ ४४ ॥
श्री पुर में वन मध्य हीं, तू भग करी अनोति ।
कहि मुँदरी अब नियन की, को कति है परतोति ॥ ४५ ॥

[पड़टिका छंद]

कहि कुजल मुद्रिके रामगात ।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात ॥

१—अष्टापद=पद्य, मीना । २—निजु=निश्चय ।

यह उत्तर देति न बुद्धिवंत ।

केहि कारण घौं हनुमंत संत ॥ ४६ ॥

[दोहा]

हनूमान-तुम पूंछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम ॥

कंकन की पदवी दर्श, तुम विन याकहँ राम ॥ ४७ ॥

राम विरह व

[दंडक]

दीरघ दरीन वसैं केशोदास केशरी ज्यों,
केशरी को देखि वन करी ज्यों कँपत हैं ।
वासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चक्रवा ज्यों चंद्र चितै चौगुनो चँपत हैं ।
कैकी सुनि व्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
वनन की घोरनि जवासी ज्यों तपत हैं ।
भौर ज्यों भँवत वन योगो ज्यों जगत रैन,
साकृत ज्यों राम नाम तेरोई जपत हैं ॥ ४८ ॥

[दोहा]

दुख देखे सुख होहिगो, सुख न दुःख विहीन ।

जैसे तपती तप तपे, होत परमपद लीन ॥ ४९ ॥

घरपा वैभव देखिकै, देखी शरद सकाम ।

जैसे रण में काल भट, भँटि भँटियत वाम ॥ ५० ॥

दुःख देखिकै देखिहौ, तय मुख आनंदकंद ।

तपन ताप तपि छौस निशि, जैसे शीतल चंद्र ॥ ५१ ॥

अपनी दशा कहा कहीं, दीप दशा सी देह ।

जरत जाति वासर निशा, केशव सहित क्षनेह ॥ ५२ ॥

→ सुगति सुकोसि सुनैनि सुनि, सुमुखि सुदंति सुभोरि । ^{ना}

दरशावै गो वेगिही, तुमको सरसिजयेनि ॥ ५३ ॥

[हरिगीत छन्द]

फलु जननि दे परतीति जासों रामचन्द्रहि आवई ।

शुभ शीश की भणि दई यह कहि सुयश तव जग गावई ॥

सब काल है ही अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ ।

सुत श्राजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥ ५४ ॥

कर जोरि पगपरितोरि उपवन कोरि किंकर मारियो ।

पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो ॥

रण मारि अक्षुमार बहु विधि इंद्रजित सों युद्धकै ।

अति ब्रह्मशर प्रमाण मानि सो वश्य भो मन शुद्ध कै ॥ ५५ ॥

हनुमान रावण संवाद

[विजय छन्द]

रे कपि कौन तु अक्ष को घातक ? दूत बली रघुनंदन जो को ।

को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा खरदूषण दूषण भूषण भू को ॥

सागर कैसे तखो ? जैसे गोपद, फाज कहा ? सियचोरहि देखो ।

कैसे यँघायो ? जो सुंदरि तेरी छुई हग सोवत पातक लेखो ॥ ५६ ॥

[चामर छन्द]

रावण-कोरि कोरि यातनानि फोरि फारि मारियै ।

काटिकाटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारियै ॥

खाल खँचि खँचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे ।

पौरि टांगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे ॥ ५७ ॥

विभीषण-दूत मारिये न राजराज छोड़ि दीजई ।

मंत्रि मित्र पूँछि कै सो और दंड कीजई ।

एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई ।

बुद सोचि गो कहा महा समुद्र छीजई ॥ ५८ ॥

तूल तेल वोरि वोरि जोरि जोरि वाससी ।

लै अपार रार उन दून सूत सेां कसी ।

पूछ पोनपूत की सँवारि वारि दी जहीं ।

अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं ॥ ५९ ॥

[चंचरी छंद]

धाम धामनि आगिकी बहु ज्वाल माल विराजहीं ।

पौन के भकभोर ते भँभरी भरोखन भ्राजहीं ॥

बाजि धारण शारिका शुक मोर जोरन भाजहीं ।

छुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं । ६० ॥

लंका दाह

[भुजंग प्रयात छंद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है ज्यों ।

शरत्काल के मेघ संख्या समै ज्यों ॥

लगी ज्वाल धूमावली नील राजें ।

मनो स्वर्ण की किंकिणी नाग साजें ॥ ६१ ॥

(११८)

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े ।
मनो ईश रोपाग्नि में काम डाढ़े ॥
कहूँ कामिनी ज्वाल मात्तानि भोरें ।
तजें लाल सारी अलंकार तोरें ॥ ६२ ॥
कहूँ भौन राने रचे धूम छाहीं ।
शयो सूर मानों लसैं मेघ मांहों ॥
जरै शस्त्रशाला मिली गंधमाला ।
मलै अट्टि मानी लगी दाव ज्वाला ॥ ६३ ॥
चली मागि चौहूँ दिशा राजरानी ।
मिली ज्वाल माला फिरँ दुःखदानी ॥
मनो ईश बानावली लाल लोरें ।
सबै दैत्यजायान के संग डोरें ॥ ६४ ॥

[सवैया]

लंक लगाइ दरै ! हनुमंत विमान बचे अति उच्चरखी है ।
पावक में उचटै बहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुखी है ॥
कंचन को पहिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है ।
गंग हजारमुखी गुनि केशो गिरा मिलो मानी अपार मुखी है ॥ ६५ ॥

[दोहा]

हनुमत लारै लंक सब, बच्यो विभीषण धाम ।
ज्यो अरुणोद्दय घेर में, पंकज पूरव याम ॥ ६६ ॥

[संयुता छंद]

हनुमंत लंक लगाइ कै । पुनि पूछ सिंधु बुझाइ कै ।
शुभ देख सीतहि पाँ परे । मनि पाय आनंद जी भरे ॥६७॥
रघुनाथ पै जव ही गये । उटि अंक लावन को भये ।
प्रभु में कहा करणी करी । शिर पाय की, धरणी धरी ॥६८॥

[दोहा]

चिन्तामणि सी मणि दर्द, रघुपति कर हनुमंत ।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥ ६६ ॥

सीता संदेश

[घनाक्षरी]

भौरनी ज्यों भ्रमति रहति वनयोधिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है ।
हरिणी ज्यों हेरति न केशरी के काननहि,
केका सुनि व्याली ज्यों बिलानहीं चहति है ।
पीउ पीउ रटत रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप द्वै रहति है ।
सुनहु नृपति राम विरह तिहारे पेसी,
सूरतिनर से ताजू की भूरति गहति है ॥ ७० ॥

[दोहा]

श्रीनृसिंह प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ ।
गये मास दिन आशु ही, झूठी है है नाथ ॥ ७१ ॥

[दंडक]

राम—सांचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुःख हरि,
 और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
 वानर नहीं हौ तुम मेरे बाण रोष सम,
 बलीमुख शर बली मुख निजु गाये हौ।
 शास्त्रामृग नाही बुद्धि बलनके शास्त्रामृग,
 कैधों घेद शास्त्रामृग केशव को भाये हौ।
 साधु हनुमंत बलघंत यशवंत तुम,
 गये एक काज को अनेक करि आये हौ ॥७२॥

[तोमर छंद]

हनुमान—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहि ल्याई वार ॥
 कह कखो मैं बलरंक। अतिमृतक जारी लंक ॥७३॥

राम पयान

तिथि विजय दशमी पाइ। उठि चले थी रघुपाइ ॥
 हरि यूथ यूथप संग। बिन पच्छ के ते पतंग ॥७४॥

[दंडक]

सुग्रीव—कहै केशोदास तुम सुनौ राजा रामचन्द्र,
 रावरी जयहि सैन उचकि चलति है।
 पूरति है भूरि धूरि रोदसिदि^१ आस पास,
 दिशि दिशि धरपा ज्यों बलनि बलति है।

१—रोदसिदि=भूमि और आकाश।

पद्म पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज राजनि दलति है।
जहां तहां ऊपर पताल पय आइ जात,
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है ॥ ७५ ॥

लक्ष्मण—भार के उतारिबे को अवतरे रामचन्द्र,
किधौं केशोदास भूरि भरत प्रबल दल।
दूटत हैं तरुवर गिरे गए गिरिचर,
सूखे सब सरवर सरिता सकल जल।
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।
लचकि लचकि जात शेष के अशेष फण,
भागि गई भोगवती अतल वितल तल ॥ ७६ ॥

[दोहा]

बल सागर लक्ष्मण सहित, कपि सागर रसाधीर।
यश सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर ॥ ७७ ॥

समुद्र वर्णन

[विजया छंद]

भूति विभूति पियूपहु की विप,
ईश सरीर कि पाप वियोहै।
है किधौं केशव कश्यप को घर,
देव अदेवन के मन मोहै।

(१२२)

संत हियो कि वसै हरि सन्तत ;
शोभ अनन्त कहै कवि को है ।
चन्दन नीर तरंग तरंगित ,
नागर कोड कि सागर सोहै ॥ ७८ ॥

[गीतिका छंद]

जलजाल फात कराल माल तिमिंगिलादिक सों वसै ।
उर तोभ दोभ विमोह कोह सकाम ज्यों बल को लसै ॥
बहु संपदा युत जानिये अति पातकी सम लेखिये ।
कोड मांगनो^१ अरु पाहुनो^२ नहिँ नीर पीषत देखिये ॥ ७९ ॥

॥ इति सुंदर कांड ॥

१-मांगन,=मंगन, भिक्षु । २-पाहुनो=मेहमान, अतिथि ।

लंका कांड

रावण प्रति मंदोदरी का उपदेश

[विजय छंद]

मंदोदरी—राम की वाम जो आनी चोराइ
सो लंक में मीचु की बेलि कई जू ॥
क्यों रण जीतहुगे तिनसों जिन
की धनु रेख न नांधि गई जू ॥
बीसविसे बलवन्त हुते जो
हुती दृग केशव रूपरई जू ॥
तेरि शरासन शंकर को पिय
सीय स्वयंवर क्यों न लई जू ॥ १ ॥

बालि बली न बच्यो पर खोरहि
क्यों बचिहौ तुम आपनि खोरहि ॥
जा लागि क्षीर समुद्र मथ्यो कहि
कैसे न बांधि हैं वारिधि थोरहि ॥
श्री रघुनाथ गतौ असमर्थ न
देखि दिना रथ हाथिन घोरहि ॥
ताखो शरासन शंकर को जेहि
सोख कहा तुष लंक न तोरहि ॥ २ ॥

विभीषण शरणागमन

[सवैया]

दीनदबालु कहावत केशव हँ अति दीन दशा गह्यौ गाढ़ो ॥
रावण के अघ ओघ समुद्र में बूडत हँ कर ही गहि काढ़ो ॥
ज्यों गज काँ प्रह्लाद की कीरति त्योही विभीषण को यश पाढ़ो ॥
आरत बंधु पुकार सुनो किन आरत हँ तौ पुकारत ठाढ़ो ॥ ३ ॥
केशव आपु सदा सह्यौ दुःख पै दासन देखि सके न दुखारे ॥
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्योही तहाँ तिहि भाँति पधारे ॥
मेरिय थार अथार कहा कहूँ नाहि तू काहु के दोष बिबारे ॥
बूडत हँ महामोह समुद्र में राखत काहे न राखनहारे ॥ ४ ॥

[हरिलीला छंद]

श्री रामचंद्र अति आरतवंत जानि ।
लीन्हौ बेलाय शरणागत सुःखदानि ॥
लंकेश आउ चिरजीवहि लंक धाम ।
राजा कहाउ जौलगि जग राम नाम ॥ ५ ॥

सेतुबंध

[दोहा]

जहँ तहँ धानर सिंधु में, गिरि गण आरत आनि ॥
शब्द रह्यो भरिपूरि महि, रावण को दुखदानि ॥ ६ ॥

[तोटक छन्द]

उड़लै जल उच्च अकाश चढ़ै ।
जल जोर दिशा विदिशान मढ़ै ॥

जनु सिंधु अकाशनदी अरि कै।

बहु भाँति मनावत पाँ परि कै ॥ ७ ॥

बहु व्योम विमान ते भीजि गये।

जल जोर भये अंगरागमये ॥

सुर सागर मानहु युद्ध जये।

सिगरे पट भूपण लूटि लये ॥ ८ ॥

अति उच्छलि छिछि त्रिकूट द्रुयो।

पुर रावण के जल जोर भयो ॥

तव लंक हनुमत लाइ^१ दई।

नल मानहु आइ बुझाह लई ॥ ९ ॥

लगि सेतु जहाँ तहँ शोभ गहँ।

सरितानि के फेरि प्रवाह बहँ ॥

पति देवनदी रति देखि भली।

पितु के घर को जनु रुसि चली ॥ १० ॥

सब सागर नागर सेतु रची।

वरणै बहुधा युत शक शची ॥

तिलकावलि सी शुभ शीश लसै।

भणिमाल किधौं उर में विलसै ॥ ११ ॥

[तारक छन्द]

उरते शिवमूरति श्रीपति लीन्ही।

शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्हीं ॥

(१२६)

इनके दृष्टी पर्यै पग जोई ।

भव सागर के तरि पार सां होई ॥ १२ ॥

[दोहा]

सेतु मूल शिव शोभिजै, केशव परम प्रकाश ॥

सागर जगत जहाजको, करिया^१ केशवदास ॥ १३ ॥

रामचमू वर्णन

[दंडक]

कुंतल ललित नील भुङ्गुटी धनुष नैन,

कुमुद कटाक्ष बाण सयज सदाई है ।

सुग्रीव सहित तार श्रंगदादि भूषण र,

मध्य देश केशरी सुगजगति भाई है ॥

विभ्रहानुकूल सय लललक्ष ऋदागल,

ऋक्षराज मुखी मुख केशो दास भाई है ।

रामचन्द्र जू की चमू राज्यश्री विभीषण की,

रावण की मीचु दरकूच चलि आई है ॥ १४ ॥

[चंचला छंद]

ताम्रकोट लोहकोट स्वर्णकोट आसपास ।

देव की पुरी धिरी कि पर्वतारि के विलास ॥

बीच बीच हैं कपीश बीच बीच ऋक्ष जाल ।

लंक कन्यका गरे कि पीत नील कंडमाल ॥ १५ ॥

१—करिया=(कर) पत्रवार ।

रावण अंगद संवाद

[दोहा]

अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लंकेश ।
मनु मधुकर करहाट^१ पर, शोभित श्यामल वेष ॥ १६ ॥

[नाराच छंद]

प्रतीहार-पढ़ो विरंचि मौन वेद जीव खेर छंडि रे ।
कुवेर वेर कै कही न यत्न भीर मंडि रे ।
दिनेश जाइ दूरि वैरु नारदादि संगहीं ।
न बोलु चंद मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं ॥ १७ ॥

[चित्रपदा छंद]

अंगद यों मुनि वानों । चित्त महारिस आनी ॥
ठेलि कै लोग अनैसे । जाइ सभा महँ वैसे^२ ॥ १८ ॥

[चित्रपदा छंद]

रावण-कौन हो पठये सो फौने ह्यां तुम्हें कह काम है ॥
अंगद-जाति वानर लंकनायक दूत अंगद नाम है ॥
रावण-कौन है वह बांधि कै हम देह पूछि सबै दही ।
लंक जाहि सँहारि अत्त गयो सो बात बृथा कही ॥१९॥
कौन के सुत बालि के वह कौन बालि न जानिये ।
कांख चापि तुम्हें जो लागर सात न्हात बखानिये ॥
है कहां वह वीर अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गयो रघुनाथ वान विमान बैठि सिधाइयो ॥२०॥

(१२८)

लंकनायक को विभीषण देव दूषण को दूहै ।
मोहि जीवत होहि क्यों जग तोहि जीवत को कहै ॥
मोहि को जग मारि है दुर्बुद्धि तेरिय जानि ।
कौन बात पठाइयो कहि घीर वेगि बखानि ॥२१॥

अंगद— [सवैया]

श्री रघुनाथ को धानर केशव आयो हो एकु न काहु हगो ॥
सागर को मद मारि चिकारि त्रिकूट को देह विहार हगो ॥
सीय निहारि संहारि कै राक्षस शोक अशोक घनीहि दगो ॥
अक्षकुमारहि मारि कै लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो ॥२२॥

[गंगोदक छंद]

राम राजान के राज आये इहां
धाम तेरे महा भाग जागे अत्रै ।
देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दे
मित्र मंत्रा जिते पूंछि देखौ सदै ।
राखिजै जाति को भांति^१ को वंश को
साधिजै लोक में लोक पलोक को ।
आनि कै पाँ परो देसलै कोचलै
आमुहीं ईश सीता चलै ओकको ॥ २३ ॥

रावण—लोक लोकेश स्यों शोचि प्रह्ला रचे
आपनी आपनी सीच सो सो रहै ।

१—भांति=भाकर ।

चारि बाहें धरे विष्णु रक्षा करै
घात सांची यहै वेदवाणी कहे ।
ताहि भ्रुभंग ही देव देवेश स्यों
विष्णु प्रह्लादि दै रुद्रजू संहरे ।
ताहि हाँ छोड़ि कै पायँ काके परौ
श्राजु संसार तो पायँ मेरे परै ॥ २४ ॥

[मदिरा छंद]

राम को काम कहा ? रिपु जीतहि
कौन कवै रिपु जीत्यो कहाँ ?
वालि बली, छल सो, भृगुनंदन
गर्व हरो, द्विज दीन महा ॥
दीन सो क्यों ? छिति छत्र हत्यो
दिन प्राणनि हैहयराज कियो ।
हैहय कौन ? धरै विसखो जिन
खेलत ही तुम्हें बांधि लियो ॥ २५ ॥

श्रंगद—

[विजय छंद]

लिंघु तख्यो उनको वनरा तुम पै धनुरेख गई न तरौ ।
बांध्योइ बांधत सो न बांध्यो उन चारिधि बांधि कै बाट करी ॥
अजहं रघनाथ प्रताप को घात तुम्हें दशकंठ न जानि परी ।
तेलनि तूलनि पूंछि जरी^१ न जरी जरी लंका जराइ जरी ॥ २६ ॥

१—जरी=जड़ी हुई, युक्त ।

रावण—
नील सुखेन हनू उनके नल श्रीर, सबै कपि पुंज तिहारे ।
आठहु आठ दिशा बलि दै अपने पदु लै पितु जालगि मारे ॥
तेसे सपूतहि जाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे ।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हने धपमारे ॥२३॥

[दोहा]

जो सुत अपने बाप को, वैर न लेइ प्रकाश ।
तासें जीवत ही मख्यो, लोग कहैं तजि भास ॥ २० ॥
अंगद-इनको बिलगु न मानिये, सुनि रावण पल आधु ।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु ॥ २६ ॥

रावण— [द्रुतविलंबित छंद]
उरसि अंगद लाज कछु गहौ । जनक घातक बात कृथा कहौ ॥
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरीं । सकल वानर राज तुम्हें करौं ॥२०॥

[निशिपालिका छंद]

अंगद-शत्रु सम मित्र हम चित्त पहिचानहीं ।
दूत विधि नूत^१ कबहुं न उर आनहीं ॥
आपमुख देखि अभिलाष अभिलाषहु ।
राखि भुज शीश तब श्रीर कहैं राखहु ॥ ३१ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

रावण-महामोचु दासी सदा पाई धेयै ।
प्रतीहार है कै कृपा सुर जोयै ॥

१- नूत=नूतन, नवीन ।

क्षपानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको ।
 करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ॥ ३२ ॥
 सका^१ मेघमाला शिखी^२ पाककारी ।
 करै कोतवाली महादंडधारी ॥
 पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके ।
 कहा वापुरो शत्रु सुग्रीव ताके ॥ ३३ ॥

[विजय छंद]

अंगद—पेट चढ़यो पलना पलिका चढ़ि
 पालकि हू चढ़ि मोह मढ़यो रे ।
 चौक चढ़यो चित्रसारी चढ़यो
 गज वाजि चढ़यो गढ़ गर्व चढ़यो रे ।
 ध्याम विमान चढ़यो ई रह्यो
 कहि केशव सो कवहूं न पढ़यो रे ।
 चेतत नाहीं रह्यो चढ़ि चित्त सेां
 चाहत मूढ़ चिताहू चढ़यो रे ॥ ३४ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

रावण—निकाखो जो भैया लियो राज जाको ।
 दियो काढ़िकै जू कहा ब्रास ताको ॥
 लिये वानराली कहौ वात तेसों ।
 सो कैसे लरै राम संग्राम मोसों ॥ ३५ ॥

अंगद—

[विजय छंद]

हार्थी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ को ठाउँ मिलेहै ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न विसत न तीय कहीं संग रहै ॥
केशव काम को राम विसारत और निकाम न कामहि पेंह
चेतिरे चेति अझैं चित अन्तर अंतकलोक अकेलोरैं जैहै ॥३६॥

[भुजंगप्रयात छंद]

रावण—डरै गाय विप्रै अनायै जो भाजै ।

परद्वय छोंड़ परछीहि लाजै ॥

परद्राह जासों न होवै रतीको ।

सु कैसे लरै बेप कीन्है यती को ॥ ३७ ॥

[दोहा]

गँद करेउँ मैं खेल को, हरगिरि केशोदास ।

शीश चढ़ाये आपने, कमल समान सहास ॥ ३८ ॥

[दंडक]

अंगद—जैसो तुम कहत उटायो एक गिरिवर,

ऐसे कोटि कपिन के घालक उठावहीं ।

काटे जो कहत शीश काटत घनेरे घाव^१,

भगर^२ के खेले कहा भट पद पावहीं ।

जीतयो जो सुरेश रण शप अरि नारिहां को,

समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं ।

१—घाव=रुद्र नाडी । २—भगर=गाद ।

गहौ राम पायँ मुख पाइ करै तपी तप,
सीताजू को देहु देव दुंदुभी बजावहीं ॥ ३६ ॥

[वंशस्थ छंद]

रावण—तपी जपी विप्रनि छिप्र ही हरौं ।
अदेव द्वेषी सब देव संहरौं ॥
सिया न देहैं यह नेम जो धरौं ।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं ॥ ४० ॥

अंगद— [विजय छंद]

पाहन ते पतिनी करि पावन दूक कियो हर को धनु को रे ॥
छत्र विहोन करी क्षण में क्षिति गर्व हखौ तिनके बल को रे ॥
पर्वतपंज ५रैनि के पात समान तरे अजहूँ धरकौ रे
होइँ नरायण हूँ पै न ये गुण कौन इहां नर वानर को रे ॥ ४१ ॥

[चंचरी छंद]

रावण—देहिं अंगद राज तोकहं मारि वानरराज को ।
बांधि देहिं विभीषणौ अरु फेरि सेतु समाज को ॥
पूछु जा रहिं अजरिपु की पाइं लागहिं रुद्र के ।
सीय को तव देहुं रामहिं पार जाइं समुद्र के ॥ ४२ ॥

अंगद—लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो ।
सिंधु बांधत शोधि कै नल क्षीर छीट बहाइयो ॥
ताहि तोहिं समेत अंध उखारि हौं डलती करौं ।
आजु राज कहां विभीषण वैटिहैं तेहिते डरौं ॥ ४३ ॥

(१३५)

[दोहा]

अंगद रावण को मुकुट, लेकर उड़्यो सुजान ।
मनो खलो यमलोक को, दशशिर को प्रस्थान ॥ ४४ ॥
अंगद लै वा मुकुट को, परे राम के पाद ।
राम विभीषण के शिरसि, भूपित कियो बनार ॥ ४५ ॥

(लंकावरोध)

[पद्यटिका छंद]

दिशि दक्षिण अंगद पूर्व नील ।
पुनि हनुमंत पश्चिम सुशील ॥
दिशि उत्तर लक्ष्मण सहित राम ।
सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम ॥ ४६ ॥

संग यूथप यूथप बल बिलास ।
पुर फिरत विभीषण आस पास ॥
निशि वासर सय को लेत सोधु ।
यहि भांति भयो लंका निरोधु ॥ ४७ ॥

नव रावण सुनि लंका निरोध ।
उपजो तन मन अति परम क्रोध ॥
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि ।
दक्षिणहिं महोदर गयो दौरि ॥ ४८ ॥
भयो इन्द्रजीत पश्चिम दुषार ।
है उत्तर रावण बल उदार ॥

कियो विरूपाक्ष धित मध्यदेश ।

करै नारान्तक चहुंघा प्रवेश ॥ ४६ ॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

अति द्वार द्वार महँ युद्ध भये । बहु ऋच्छ कंगूरन लागि गये ॥

तव स्वर्ण लंक महँ शोभ भई । जनु अग्निज्वाल महँ धूममई ॥५०॥

(मेघनाद युद्ध)

[दोहा]

मरकत मणि के शोभिजै, सबै कँगूरा चारु ॥

आइ गयो जनु घात को, पातक को परिवारु ॥५१॥

(कुसुमविचित्रा छंद)

तव निकसो रावणसुत शूरो । जेहि रन जीत्यो हरि^१ बलपूरो ॥

तपबल माया तम उपजायो । कपिदल के मन संभ्रम छायो ॥५२॥

[दोधक छन्द]

काहु न देखि परै वह बोधा ।

यद्यपि हैं सिगरे बुधि बोधा ॥

शायक सो अहिनायक साध्यो ।

सोदर स्यो रघुनायक बांध्यो ॥ ५३ ॥

रामहिं बांधि गयो जब लंका ।

रावण की सिगरी गई शंका ।

देखि बंधे तव सोदर दोऊ ।

यूथ यूथ प्रसे सब कोऊ ॥ ५४ ॥

[स्वागता छंद]

इंद्रजांत तेहि सै उर लाये । आहु काज सब मो मन मां
कै विमान अधिरुद्रिदि धाये । जानकीहि रघुनाथ दिनाये ॥

[दोहा]

कालसर्प के कयल ते, छोरत विनयो नाम ॥

बंधे ते ब्राह्मण वचन वश, माया सर्पहि राम ॥ ५६ ॥

[स्वागता छंद]

पन्नगारि तवही तहँ आये । व्याल जाल सब मारि मगये ।
लंक मांझ तवहीं गइ सांता । शुभ्र देह अवलोकि सुगोता ॥ ५७ ॥

(रावण प्रति महोदर का उपदेश)

महोदर—कहै जो कोऊ हितवंत बानी ।

कहौ सो तासैं अति दुःखदानी ॥

गुनौ न दावै बहुधा कुदावै ॥

सुधी तवै साधत मीन भावै ॥ ५८ ॥

कहौ शुकाचार्य्य सु हों कहीं जू ।

सदा तुम्हारे हित संग्रहों जू ॥

नृपाल भूमैं विधि चारि जानों ।

मुनो महाराज सवै बखानों ॥ ५९ ॥

[मुजंगप्रयात छंद]

यहै लोक एकै सदा साथि जान ।

बली बंनु ज्यों आपुही ईश मानै ॥

करैं साधना एक परलोकही को ।
हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को ॥ ६० ॥
दुहं लोक को एक साथैं सयाने ।
विदेहीन ज्यों वेद धानी बखाने ॥
नठैं^१ लोक दोऊ हठी एक ऐसे ।
त्रिशंकै हँसैं ज्यों भलेऊ अनैसे ॥ ६१ ॥

[दोहा]

चहू राज को मैं कहूँ, तुमसों राजचरित्र ॥
रुचै सो कीजै चित्तमें, चिंतहु मित्र अमित्र ॥ ६२ ॥
चारि भांति मंत्री कहे, चारि भांति के मंत्र ॥
मोहिं सुनायो शुक्रजू, सोधि सोधि सब तंत्र ॥ ६३ ॥

[छप्पै]

एक राज के काज हतैं निज कारज काजे ।
जैसे सुरथ निकांरि सबै मंत्री सुख साजे ॥
एक राज के काज आपने काज विगारत ।
जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निवारत ॥
एक प्रभु समेत अपनो भलो करत दाशरथि दूत ज्यों ।
एक अपनो अरु प्रभु को बुरो करत राघरो पूत ज्यों ॥ ६४ ॥

[दोहा]

मंत्र जो चारि प्रकार के, मंत्रिन के जे प्रमान ॥
धिप से दाड़िमयीज से, गुड़ से नींब समान ॥ ६५ ॥

(१३८)

[चंद्रवर्त्म छंद]

राजनीति मत तत्व समुक्तिये ।
देश काल गुण युद्ध अरुक्तिये ॥
मंत्रि मित्र अरि को गुण गहिये ।
लोक लोक अपलोक न बहिये ॥ ६६ ॥

रावण—चारि भांति नृपता तुम कहियो ।
चारि मंत्रि मत मैं मन गहियो ॥
राम मारि मुर एक न बचिहँ ।
इंद्रलोक सो वासहिँ रचिहँ ॥ ६७ ॥

[प्रमिताक्षरा छन्द]

उठि कै प्रहस्त सजि सैन चले ।
बहु भांति जाइ कपि पुंज दले ॥
तय दौरि नील उठि मुष्टि हन्यो ।
असुहीन गिखो मुख मुंड सन्यो ॥ ६८ ॥

[यंशस्या छन्द]

महाबली जूकत ही प्रहस्त को ।
चढ़यो तहीं रावण मीढ़ि हस्त को ॥
अनेक भेरी बहु हुंदुमी बजँ ।
गयंद मोघांध जहां तहां गजँ ॥ ६९ ॥

[सवैया]

देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोय रई है ।
 छूटतही हनुमंत सौं बीचहि पूछ लपेटि कै डारि दई है ॥
 दूसरी ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावतही हाइ हाइ भई है ।
 राख्योभ ले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूलसी ओड़ि लई है ॥ ७० ॥

[दोषक छन्द]

यद्यपि है अति निर्गुणताई । मानुष देह धरे रघुराई ।
 लक्ष्मण राम जहाँ अवलोक्यो । नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो ॥ ७१ ॥

राम विलाप

लोचन बाहु तुहीं धनु मेरो ।
 तू बल विक्रम चारक हेरो ॥
 तूबिन हौं पल प्राण न राखौं ।
 सत्य कहौं कछु भूँड न भाखौं ॥ ७२ ॥
 मोहिं रही यतनी मन शंका ।
 देन न पाई विभीषण लंका ॥
 बोलि उठौ प्रभु को प्रण पारो ।
 नातरु होत है मो मुख कारो ॥ ७३ ॥

[पदपद]

राम-करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु ।
 रुद्रन बोरि समुद्र करौ गंधर्व सर्व पसु ॥
 बलित अवेर कुवेर बलिहि गहि देउ इद्र अब ।
 विद्याधरनि अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब ॥

निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटजार जल ।
सुनि मूरज सूरज उदत ही-करीं असुर संसार बल ॥ ७३ ॥

हनुमंत पैज

[भुजंगप्रयात छंद]

हन्यो विघ्नकारी बली वीर यामें ।
गयो शीघ्रगामो गये एक यामें ॥
चल्यो लै संघे पर्वतै के प्रणामें ॥
न जान्यो विशल्यौपधी कौन तामें ॥ ७४ ॥

द्रोणगिरि आनयन

लसैं औपधी चारु भो व्योमचारो ।
कहैं देखि यों देव देवाधिकारो ॥
पुरी भौम की सी लिये शीशराजै ।
महामंगलार्थी हनुमन्त गाजै ॥ ७५ ॥
लगी शक्ति रामानुजै रामसाथी ।
जड़ै ह्वैगये ज्येां गिरै हेम हाथी ॥
तिन्हें ज्याइये को सुनो प्रेमपाली ।
चल्यो ज्याल मालीहि लै कीर्तिमाली ॥ ७६ ॥
किधीं प्रातहीकाल जी में विचाखो ।
चल्यो अंशु लै अंशुमाली सँहाखो ॥
किधीं जात ज्यालामुखी जोर लीन्हें ।
महामृत्यु जामें मिटै होम कीन्हें ॥ ७७ ॥

विनापत्र हैं यत्र पालाश फूले ।
रनें कोकिलाली भ्रमें भौर भूले ॥
सदानंद रामें महानंद को लै ।
हनूमंत आये वसंतै मनो लै ॥ ७६ ॥

[मोटनक छंद]

ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये ।
दूनी शुभ शोभ शरीर लिये ॥
कोदंड लिये यह वात ररै ।
लंकेश न जीवत जाइ घरै ॥ ८० ॥
श्रीराम तहीं उर लाइ लियो ।
सूँघ्यो शिर आशिष कोटि दियो ॥
कोलाहल यूथप यूथ कियो ।
लंका हहली दशकंठ हियो ॥ ८१ ॥
रावणप्रति कुंभकर्ण का उपदेश

[मनोरमा छंद]

कुंभकर्ण—सुनिये कुलभूषण देव विदूषण ।
बहु आजिविराजिन^१ के तुम पूषण ॥
भवभूप जे चारि पदारथ साधत ।
तिनको कबहु नहिं घाधक वाधत ॥ ८२ ॥

(१४२)

[पंकजवाटिका छंद]

धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत ।

संतति हित रति कोविद् गावत ॥

संतति उपजत ही निशि वासर ।

साधत तन मन मुक्ति महीधर^१ ॥ २३ ॥

[दोहा]

राजा अरु सुवराज जग, मोहित मंत्रो मित्र ।

कामो कुटिल न सेंदये, कृपण कृतघ्न अमित्र ॥ २४ ॥

[घनाक्षरी]

कामी यामी मूंड क्रोधो कोढ़ो कुलद्वेषी खलु

कातर कृतघ्नो मित्रदोषी द्विजद्रोहिये ।

कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही क्रूर

कुटिल कुमंत्रो कुलहीन केशो देहाहिये ॥

पापो लोभी शठ अंध घाघरो बधिर गूंगा

बोना अधिवेकी हठी छली निरमोहिये ।

मूम सर्वमन्त्री दयघादी जो कुर्यादी जड़

अपयशो पेसो भूमि मूपति न सोहिये ॥ २५ ॥

[निशिपालिका छंद]

वानर न जानु मुर जानु शुभगाय हैं ।

मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं ॥

१—महीधर = रागा ।

जानकिहि देहु करि नेहु कुल देह सो ।

आजु रण साज पुनि गाजु हँसि मेह सो ॥ ८६ ॥

[दोहा]

रावण-कुंभकरण करि युद्ध कै, सोइरहौ घर जाइ ।

वेगि विभीषण ज्यों मिल्यो, गहौ शत्रु के पाइ ॥ ८७ ॥

कुंभकरण-युद्ध

[चामर छंद]

कुंभकरण रावणें प्रदक्षिणाहि दै चल्यो ।

हाइ हाइ ह्वै रह्यो अकाश आशुही हल्यो ।

मध्य जुद्धघंटिका किरीट शीश शोभनो ।

लक्ष पक्ष सो कलिन्द्र इन्द्र पै चढ्यो मनो ॥ ८८ ॥

[नाराच छंद]

उड़ैं दिशा दिशा कपीश कोरि कोरि श्वासहीं ।

चपैं चपेट पेट बाहु जानु जंघ सो तहीं ॥

लये हैं और पैचि पैचि वीर बाहु बातहीं ।

भपे ते अन्तरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जातहीं ॥ ८९ ॥

[भुजंगप्रयात छन्द]

कुंभकरण- न हौं ताडुका हौं सुवाहै न मानों ।

न हौं शंभु कौदंड सांची बखानों ॥

न हौं ताल वाली खरे जाहि मारो ।

न हौं दूषणो सिन्धु सूधो निहारो ॥ ९० ॥

(१४६)

कछु माँगिये घर वीर सत्यर भक्ति श्री रघुनाथ को ।
पहिराह माल विशाल अर्चहि कै गये शुभ गाय को ॥१००॥

[कलहंस छंद]

हति इंद्रजीत कहँ लज्मण आये ।
हाँसि रामचन्द्र घहुघा उरलाये ॥
मुनि मित्र पुत्र शुभ सोदर मेरे ।
कहि कौन कौन मुमिरों गुण तेरे ॥ १०१ ॥

[दोहा]

नींद भूख अरु प्यास को, जो न साधते वीर ॥
सीतहि क्यों हम पावते, मुनु लज्मण रणघोर ॥ १०२ ॥

रावण विलाप

[दंडक]

रावण—आहु आदित्य जल पवन पावक प्रबल,
चंद्र आनंद मय ताप जग को हरी ।
गान किन्नर करहु नृत्य गंधर्व कुल,
यक्ष सिद्धि लक्ष उर यक्षकदंभ^१ धरी ॥
प्रह्लाद रुद्रादि दे देव त्रैलोक के,
राज को जाय अभियेक इन्द्रहि करी ।
आहु सिय राम दै लंक कुल दूषणहि,
यह को जाय सर्वह विप्रनवरौ ॥ १०३ ॥

१—यक्षकदंभ=एक प्रकार का बौंग खेप जो यक्षों को अतिप्रिय है ।
“कपूरा गुरु कम्पुतिकंकोलैवंचकदंभः” ।

मकराक्ष वध

[भुजंगप्रयात छंद]

मकराक्ष—महाराज लंका सदा राज कीजै ।
 करौ युद्ध मेरो विदा वेगि कीजै ॥
 हतौ राम स्यो वंधु सुग्रीव मारौ ।
 अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौ ॥ १०४ ॥

[वसंततिलका छंद]

विभीषण—कौदंड हाथ रघुनाथ सँभारि लीजै ।
 भागे सबै समर यूथप दृष्टि दीजै ॥
 वेटा बलिष्ठ खर को मकराक्ष आयो ।
 संहार काल जनु काल कगल धायो ॥ १०५ ॥
 सुग्रीव अंगद बली हनुमंत रोक्यो ।
 रोक्यो रह्यो न रघुवीर जहीं विलोक्यो ॥
 माख्यो विभीषण गदा उर जोर ठेली ।
 काली समान भुज लक्ष्मण कंड मेली ॥ १०६ ॥
 गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंग भारे ।
 काटे कटै न बहु भांतिन काटि हारे ॥
 ब्रह्मा दियो वरहि अस्त्र न शस्त्र लागै ।
 लै ही चलयौ समर सिंहहि जोर जांगै ॥ १०७ ॥
 गाढ़ांधकार दिवि भूतल लीलि लीन्दो ।
 अस्त्रास्त मानहुं शशी कहँ रडि कान्हो ॥

(१४ =)

हाहादि शब्द सब लोग जहाँ पुकारे ॥
वाढ़े अशेष अंग राक्षस के बिदारे ॥
श्री रामचन्द्र पग लागत चित्त हएँ ।
देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्पवर्षे ॥ १० = ॥

रावण कृत संधि-प्रस्ताव

[दोहा]

जूमतही मकरान्त के, रावण अति दुख पाइ ।
सत्वर श्रीरघुनाथ पै, दियो बसीठ पडाइ ॥ १०६ ॥

[सुंदरी छंद]

दूतहि देखतहो रघुनाथरु । तापहँ बोलि उठे मुखशायरु ॥
रावण के कुशलीसुत सोदर । कारज कौन करै अपने घर ॥ ११० ॥

दूत—

[विजय छन्द]

पूजि उठे जयहीं शिव को तवहीं विधि शुकृ बृहस्पति आये ।
कै बिनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाये ॥
होम की रीति नई सिखई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाये ।
हैं इत को पठयो उनको उत लै प्रभु मंदिर मांझ सिधाये ॥ १११ ॥

[संदेश]

शर्पणखा जो विरूप करी तुम तात क्रियो हमहुँ दुख भाते ।
वारिधि बंधन कीन्हों दुतां तुम मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो ॥
होइ जो होनी सो ह्वै ही रहै न मिटै जिय कोटि विचार विचारो
दैं भृगुनंदन को परया रघुनंदन सीतहि लै पगुधारो ॥ ११२ ॥

[दोहा]

प्रति उत्तर दूतहि दियो, यह कहि श्री रघुनाथ ॥
कहियो रावण होहि जव, मंदोदरि के साथ ॥ ११३ ॥

[संयुता छंद]

रावण—कहि धौं विलंब कहा भयो । रघुनाथ पै जव तू गयो ॥
कहि भांति तू अवलोकियो । कहु तोहि उत्तरका दियो ॥ ११४ ॥

[दंडक]

दूत—भूतल के इंद्र भूमि पौढ़े हुते रामचन्द्र,
मारिच कनकमृगछालहि चिझाये जू ।
कुंभहर कुंभकर्णनाशाहर गोद शीश
चरण अकंप अक्ष अरि उर लाये जू ।
देवांतक नारांतक अंतक त्यों मुसक्यात,
विभीषण बैन तन कानन उजाये जू ।
मेघनाद मकराक्ष महोदर प्राणहर,
बाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू ॥ ११५ ॥

रामसंदेश— [विजय छंद]

भूमि दई भुवदेवन को भृगुनंदन भूपन सों वर लैके ।
धामन स्वर्ग दियो मयचै सो बली बलि बांधि पताल पठे कै ।
संधिकी वातन को प्रतिउत्तर आपुनही कहिये हित कैके ।
दीन्हीं हैलंक विभीषण को अब देहि कहा तुमको यह दैके ॥ ११६ ॥

मंदोदरी—

[मालिनी छंद]

तब सब कहि हारे राम को दूत आये ।

अब समुझि परी जो पुत्र भैया जुभाये ॥

दशमुख मुख जीजै राम सेां हीं लरों येां ।

हरि हर सब हारे देविदुर्गा लरी ज्यो ॥ ११७ ॥

रावण-छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै ।

रघुपति घपुरा को धावतो सिंधु पारै ॥

हति सुरपति भर्ता विष्णु मायाविलासी ।

सुनहि सुमुखि तोको ल्यावतो लज्जिदासी ॥ ११८ ॥

रावण यज्ञ विध्वंस

[चामर छंद]

प्रौढरूढिकोश^१ मूढ़ गूढ़ गेह में गयो ।

शुकमंत्र शोधि शोधि होम को जही भयो ॥

वायुपुत्र बालिपुत्र जामवंत धारयो ।

लंक में निशंक अंक^२ लंक नाथ पाइयो ॥ ११९ ॥

मत्त दंति पंक्ति बाजिराजि छोरिकी दई ।

भांति भांति पक्षि राजि भाजि भाजिकै गई ।

आसने विद्यावने वितान तान तुरियो ।

यत्रतत्र छत्र चारु चीर चारु चूरियो ॥ १२० ॥

१—प्रौढरूढिकोश=पकी दिठारै का समूह=घातदाठ ।

२—अंक=राम विन्दादि ।

[भुजंगप्रयात छंद]

नगाँ देखिकै शंकि लंकेश वाला ।
 दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला ॥
 तहां दौरिगो वालि को पूत फूल्यो ।
 सबै चित्रको पुत्रिका देखि भूल्यो ॥ २२१ ॥

गहँ दौरि जाको तजै ताकि ताको ।
 तजै जा दिशा को भजै वाम ताको ॥
 भली कै निहारी सबै चित्रसारी ।
 लहै सुंदरी क्यो दरी को बिहारी ॥ १२२ ॥
 तजै दृष्टि को चित्र की सृष्टि धन्या ।
 हँसी एक ताको तहीं देव कन्या ॥
 तहीं हासही देव कन्या दिखाई ।
 गहाँ शंकि कै लंकरानी बताई ॥ १२३ ॥

सुआनी गहे केश लंकेश रानी ।
 तमश्री मनों सूर शोभानि सानी ॥
 गहे वाहँ पँचें चहँ श्रोर ताको ।
 मनो हंस लोन्हे मृणाली लता को ॥ १२४ ॥
 छुटी कंठमाला लुरें हार दूटे ।
 खसैं फूल फूले लसैं केशछूटे ॥
 फटी कंचुकी फिकिणी चारु छूटी ।
 पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी ॥ १२५ ॥

सुनी लंक रानीन की दीन यानी ।
 तहीं छांडि दीन्हो महा मौन मानो ॥
 उठ्यो सो गदा लै यदा लंकवासी ।
 गये भागि कै सर्व शाखा वितासी ॥ १२६ ॥

मंदोदरी—

[दोहा]

सीतहि दीन्हो दुष वृथा, सांचो देखो आज्ञ ।
 करै जो जैसी त्यां लहै, कदा रंक कह राज्ञ ॥ १२७ ॥

रावण—

[विजय छंद]

को बपुरा जो मिल्यो है विभीषण है कुलदूषण जीवैगो कौलौ ।
 कुंभकरध मखो मघवारिषु तौरी कहा न डरीं यम सौलीं ॥
 थो रघुनाथ के गातनि सुंदरि जानै न तू कुशली तनु तौलीं ।
 शाल सथे दिगपालन के कर रावण के करवाल है जौलीं ॥ १२८ ॥

राम रावण युद्ध

[चामर छंद]

रावणें चले चले ते धाम धाम ते सबै ।
 साजि साजि साज सूर गाजि गाजिकै तथै ॥
 दीह दुंदुभी अपार भांतिभांति बाजहीं ।
 युद्ध भूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति राजहीं ॥ १२९ ॥

[चंचरी छन्द]

इन्द्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखिकै ।
 वेगि सारथि सेां कहेउ रथ जाहि लै सुविशेषि कै ॥

तूण अक्षय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को ।
 आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय^१ प्रणाम को ॥ १३० ॥
 कोटि भांतिन पौन ते मन ते महा लघुता^२ लसै ।
 बैठिकै ध्वज अग्र श्रीहनुमंत अंतक ज्यों हँसै ॥
 रामचन्द्र प्रदक्षिणा करि दक्ष है जवहीं चढ़े ।
 पुष्प बर्षि वजाय दुंदुभि देवता बहुधा बड़े ॥ १३१ ॥
 राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के पढ़यो ।
 बीसबाहुन को शरावलि व्याम भूतल सो मढ़यो ॥
 शैल है सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे ।
 ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे ॥ १३२ ॥

[सुंदरी छंद]

वायुन साथ विधे सब वानर ।
 जाय परे मलयाचल की धर ॥
 सूरज मंडल में एक रोवत ।
 एक अकारणदी सुख धोवत ॥ १३३ ॥
 एक गये यमलोक सहे दुख ।
 एक कहैं भव भूतन लौं रुख ॥
 एक ते सागर मांरु परे मरि ।
 एक गये बड़वानल में जरि ॥ १३४ ॥

(१५४)

[मोटनक छंद]

श्रीलक्ष्मण कोप कखो जवहीं ।
छोड़्यो शर पावक को तवहीं ॥
जाखो शर पंजर छार कखो ।
नैऋत्यन^१ को अति चित्त डखो ॥ १३५ ॥
दौरै हनुमंत बली बलसों ।
लै अंगद संग सबै दल सों ॥
मानो गिरिराज तजे डर को ।
घेरै चहुं ओर पुरंदर को ॥ १३६ ॥

[हरिच्छंद]

अंगद रणअंगन सब अंगन मुक्ताह कै ।
अक्षयपतिहिँ अक्षरिपुहिँ लक्ष्मणति बुक्ताह कै ॥
वानर गण घाएन सन केशव जवहीं मुखो ।
राधण दुखदावन जगपावन समुहे जुखो ॥ १३७ ॥

[ब्रह्मरूपक छंद]

इंद्रजीत-जीत आनि रोकियो मुवाए तानि ।
छोंड़िदीन वीरवानि कान के प्रमान आनि ॥
स्यो पताक काटि चाप चर्म चर्म मर्म छेदि ।
जातमा रसातले अशेष फंडमाल भेदि ॥ १३८ ॥

[दंडक छंद]

सूरज भुसल नील पट्टशि परिव नल
 जामवंत असि हनू तोमर प्रहारे हैं ।
 परशा सुखेन कुंत केशरी गवय शूल
 विभीषण गदा गज भिंदिपाल तारे हैं ।
 मोगरा द्विविद तीर कटरा कुमुद नेजा
 अंगद शिला गवाक्ष विटप विदारे हैं ।
 अंकुश शरभ चक्र दधिमुख शेष शक्ति
 बाण तिन रावण श्रीरामचंद्र मारे हैं ॥ १३६ ॥

[दोहा]

द्वैभुज श्रीरघुनाथ सों, विरचे युद्ध विलास ।
 बाहु अठारह यूथपनि, मारे केशोदास ॥ १४० ॥

[गंगोदक छंद]

युद्ध जोई जहां भांति जैसी करै
 ताहि ताही दिशा रोंकि राखै तहीं ।
 अस्त्र आपने लै शस्त्र काटै सबै
 ताहि केहूं फहूं घाव लागै नहीं ॥
 दीरि सौमित्र लै बाण कोदंड ज्यों
 खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली ।
 शैल शृंगावली छोड़ि मानों उड़ी
 एक ही बेर कै हंस वंशावली ॥ १४६ ॥

(१५६)

[त्रिमंगी छंद]

लक्ष्मण शुभ लक्षण बुद्धि विचक्षण रावण सेां रिस छोड़ दी।
बहु बाणनि छंडे जे सिर खंडे ते फिर खंडे शोभनां ॥
यद्यपि रणपंडित गुणगण मंडित रिपु बल खंडित भूलयां।
तजि मन बध कायक सूरसहायक रघुनायक सेां बचन कहै ॥१४७॥
ठाढ़ो रण गाजत केहुँ न भाजत तन मन लाजत सखलायक।
सुनि श्रीरघुनंदन मुनिजन धंदन दुष्ट निकंदन मुखदायक ॥
अब टरै न टाख्यो मरै न माख्यो हौं हडि हाख्यो धरि शायक।
रावण नहिं भारत देव पुकारतहे अति आरत जगनायक ॥१४८॥

रावण बध

छन्द

राम—जेहि शर मधु मद मरदि महासुर मर्दन कीन्हेंउ।
मारहु कर्कश नर्क शंखहति शंख जेा लीन्हेंउ ॥
निष्कंटक सुर कटक कखो कैटभ बपु पंड्यो।
खर दूपर विशिरा कबध तरु पंड विहंड्यो।
कुंभकरण जेहि संहख्यो पल न प्रतिज्ञा ते टरीं।
तेहि बाण प्राण दशकंट केकंट दर्शा पंडित करीं ॥ १४९ ॥

[दोहा]

रघुपति पठयो आनुही, अशुहर बुद्धिनिधान ॥
दशशिर दशहूँ दिशन को, बलि दी आयो वान ॥ १४५ ॥

[मदनमनोरमा छंद]

भुव भारहि संयुत राकस को
 गण जाइ रसातल में अनुराग्यो ।
 जग में जय शब्द समेतिहि केशव
 राज विभीषण के स्त्रि जाग्यो ।
 मय दानव नंदिनि के सुख से
 मिलि कैसिय के हिय को दुखभाग्यो ।
 सुर दुंदुभी सीस गजा^१ शर राम को
 रावण के शिर साथहि लाग्यो ॥ १४६ ॥

[विजय छंद]

मंदोदरी—जीति लिये दिगपाल शची के
 उसासन देवनदी सब सूझी ।
 वासरहू निशि देवन की
 नर देवन फी रहै संपति दूझी ।
 तीनहुं लोकन की तरुणीन
 की घारी बँधी हुती दंड दूहू की ।
 सेवत श्वान शृगाल से रावण
 सेवत सेज परे अरु भू की ॥ १४७ ॥

[तारक छंद]

राम—अरु जाहु विभीषण रावण लैकै ।
 सकलत्र सयंधु क्रिया सब कैकै ॥

(१५२)

जन सेवक संपत्ति कोय सँभाये ।
मयनंदिनि के सिगरे दुख टारो ॥ १४८ ॥

सीता की अग्निपरीक्षा

[तारक छंद]

राम-उप जाय कहाँ हनुमंत हमारो ।
सुख देवहु दीरघ दुख भिदारो ॥
सब भूषण भूषित कै शून गीता ।
हमको तुम बेगि दिखावहु सीता ॥ १४९ ॥
हनुमंत गये तवहीं जहाँ सांता ।
तब जाय कहाँ उप को सब गीता ॥
पग लागि कहाँ जननी पगु धारो ।
मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो ॥ १५० ॥
सिगरे तब भूषण भूषित कौने ।
धरि कै कुसुमायलि अंग नवने ॥
द्विज देवनि बन्दि पढ़ीं शुभगीता ।
तब पावक अंक चलीं चढ़ि सांता ॥ १५१ ॥

[भजग प्रयात छंद]

सदस्त्रा सब अङ्ग शृंगार सोहैं ।
विलोके रमा देव देवी विमोहैं ॥
पिता अंक ज्यौं कन्यका शुभगीता ।
ससै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता ॥ १५२ ॥

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी ।
 कि संग्राम की भूमि में चंडिका सी ॥
 मनो रत्नसिंहासनस्था शची है ।
 किधों रागिनी राग पूरे रची है ॥ १५३ ॥
 गिरापूर में है पयोदेवता सी ।
 किधों कंज की मंजु शोभा प्रकाशी ॥
 किधों पद्म ही में सिंहाकंद सो है ।
 किधों पद्म के कोप पद्मा विमो है ॥ १५४ ॥
 किं सिन्दूरशैलाग्र में सिद्ध कन्या ।
 किधों पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या ॥
 सरोजासना है मनो चारु बानी ।
 जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी ॥ १५५ ॥
 मनो श्रौपथी वृन्द में रोहिणी सी ।
 कि दिग्दाह में देखिये योगिनी सी ॥
 धरापुत्र ज्यों स्वर्ण माला प्रकाशै ।
 मनो ज्योति सी तच्छुक्राभोग^१ भासै ॥ १५६ ॥

[सुरेन्द्रवज्रा छंद]

आसावरी माणिक कुंभ शोभै अशोक लंग्रा वन देवता सी ॥
 पालाशमाला कुसुमालि मध्ये वसन्तलक्ष्मी शुभ लक्षणासी ॥
 आरक्त पत्रा शुभि विघ्न पुत्री मनो विराजै अति चारु वेपा ॥
 संपूर्ण सिंदूर प्रभा सुमंडी नणेश भालस्थल चंद्ररेखा ॥ १५७ ॥

(१६०)

[विजय छंद]

है मणिदर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अमुक्त प्रमोता ।
पुज प्रताप में कोरति सो तप तेजन में मनें सिद्ध विनीता ॥
ज्यों रघुनाथ तिहारिये भक्ति लसै उर केशव के शुभ गोता ।
त्यों श्रवणोक्ति अनेंद्रकंद हुताशन मध्य सवासन सीता ॥१५८॥

[दोहा]

इन्द्र वरुण यम सिद्ध सब, धर्म सहित धनपाल ।
ब्रह्म रुद्र लै दशरथहिं, आय गये तेहि काज ॥ १५९ ॥

[वसंततिलका छंद]

अग्नि—श्री रामचन्द्र यह संतत शुद्ध सीता ।
ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्र गोता ॥
हूजै कृपाल गहिजै जनकात्मजा या ।
योगीश ईश तुम ही यह योगमाया ॥ १६० ॥
श्रीरामचन्द्र हँसि अंक लगाय लीन्हो ।
संसार साक्षि शुभ पापक आनि दीन्हो ।
देवान दुंदुभि बजाय सुगीत गाये ।
ब्रलोक्य लोचन चकोरनि चित्र भाये ॥ १६१ ॥

ब्रह्माकृत रामस्तुति

[दोषक छंद]

ब्रह्मा—राम सदा तुम अन्तर्यामी ।
लोक चतुर्दश के अभिरामी ॥

निर्गुण एक तुम्हें जग जानै ।
एक सदा गुणवन्त बखानै ॥ १६२ ॥
ज्योति जगै जगमध्य तिहारी ।
जाइ कही न सुनी न निहारी ॥
कोउ कहै परिमान न ताको ।
आदि न अंत न रूप न जाको ॥ १६३ ॥

[तारक छंद]

तुम हो गुणरूप गुणी तुम ठाये ।
तुम एक ते रूप अनेक बनाये ॥
एक है जो रजोगुण रूप तिहारो ।
तेहिं सृष्टि रची विधिनाम विहारो ॥ १६४ ॥
गुणसत्त्व धरे तुम रक्षत जाको ।
अब विष्णु कहैं सिंगरे जग ताको ॥
तुमहीं जग रुद्र स्वरूप सँहारो ।
कहिये तिन मध्य तमोगुण भारो ॥ १६५ ॥
तुमहीं जग हो जग है तुमहीं मैं ।
तुमहीं विरची मर्याद दुनी मैं ॥
मर्यादहि छोंड़त जानत जाको ।
तवहीं अवतार धरो तुम ताको ॥ १६६ ॥
तुमहीं धर कच्छप वेप धरे जू ।
तुम मीन है वेदन को उधरे जू ॥

तुमहीं जग यज्ञवराह भये जू ।
त्रिति छीनि तई हिरण्याक्ष हये जू ॥ १६३ ॥
तुमहीं नरसिंह के रूप सँघायो ।
प्रह्लाद के दीरघ दुःख विदायो ॥
तुमहीं बलि वामन धेय छल्यो जू ।
भृगुनंदन हँ त्रिति छत्र दल्यो जू ॥ १६४ ॥
तुमहीं यह रावण दुष्ट सँहायो ।
घरणी महं वूडन घन्न उवायो ।
तुमहीं पुनि हन्य के रूप धरंगे ।
हनि दुष्टन ओ भुव मार हरंगे ॥ १६५ ॥
तुम बौद्ध स्वरूप दयाहि धरंगे ।
पुनि कलिक हँ न्लेच्छ समूह हरंगे ॥
यहि माँति अनंक स्वरूप निहारें ।
अपनी मय्याद के कर्ष्य सँवारें ॥ १६६ ॥

स्वदेश प्रत्यागम

[दोहा]

वानर राजस्य श्रुत सब, मित्र कलत्र समेत ।
पुष्पक चढ़ि रघुनाथ जू, चले अथवि के हेत ॥ १६७ ॥

[चंबपी छंद]

सेतु साँतहि शोमना दर्याइ पञ्चवटी गये ।
पारँलागि अगस्त्य के पुनि अत्रियौ ते विदा भये ॥

चित्रकूट विलोकि कै तव ही प्रयाग विलोकियो ।
भरद्वाज वसैं जहां जिनते न पावन है वियो ॥ १७२ ॥

त्रिवेणी वर्णन

[तारक छंद]

राम—चिलकै द्युति सूक्ष्म शोभति वारु ।
तनु है जनु सेवत हैं सुर चारु ॥
प्रतिविम्बत दीप्ति दिपै जल माहीं ।
जनु ज्वालमुखीन के जाल नहाहीं ॥ १७३ ॥
जल की द्युति पीत सितासित सोहै ।
चहुँपातक घात करै यरु कोहै ॥
मदपण^१ मलै घसि कुंकुम नीको ।
नृप भारतखंड दियो जनु शोको ॥ १७४ ॥

[दंडक]

लक्ष्मण—चतुरवदन पंचवदन षटवदन,
सहस्रवदन हू सहस्रगति गाई है ।
सातलोक सातद्वीप सातहू रसातलनि,
गंगाजी की शोभा सबही को सुखदाई है ।
यमुना को जल रह्यो फैलि कै प्रवाह पर,
केशोदास वीचवीच गिरा की गौराई है ।
शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन को,
श्यामल दुकूल भौन भलकति भाई है ॥ १७५ ॥

१—मदपण=पथमद, कस्तूरी ।

सुप्रीव— [चंद्रकला]

भवमागर को जनु संतु उजागर सुंदरता सिगरी बम शं।
निहुँदंशन की धुति सी दर्यै गति शोपै विदोपन के रसशं॥
कहि केंगय वेदत्रयी मति सी परिनापत्रयो तल को मसशं।
सब बंदे त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेणिहि केतु त्रिविक्रम के जसकी १३६

विभीषण — [दंडक]

भूल को वेंगी सी त्रिवेणी शुभ शोभिजनि,
एक कहें सुरपुर मारग विमान है।
एक कहें पूरण अनादि जो अनंत कोऊ,
ताको यह फेशोदास द्रवरूप मात्र है।
सब मुखकर सब शोभाकर मेरे जान,
कानो यह अद्भुत सुगंध अवदात है।
दरश परश हू ते धिर चर जीवन को,
कोटि कोटि जन्म को कुगंध मिटि जात है ॥ १३७

भरडाज आश्रम वर्णन

[भुजंगप्रयात छंद]

भरडाज की वाटिका राम देवी।
महादेव कैसी बनी चित्तलेखी ॥
सबै वृत्त मंदारहृते मले हैं।
दृहकाल के फूल फूले फले हैं ॥ १३८ ॥
कहू हंसिनी हंस स्यां चित्त चोरें।
शुनै ओस के बंद मुक्कानि भोरें ॥

शुकाली कहुँ सारिकाली विराजैं ।
पढ़ैं वेद मंत्रावली भेद साजैं ॥ १७६ ॥
कहुँ वृक्षमूलस्थली तोय पीवैं ।
महामत्त मातंग सीमा न छीवैं ॥
कहुँ विप्र पूजा कहुँ देव अर्चा ।
कहुँ योगशिक्षा कहुँ वेदचर्चा ॥ १८० ॥
कहुँ साधु पौराणकी गाथ गावैं ।
कहुँ यज्ञ की शुभ्र शाला बनावैं ॥
कहुँ होम मंत्रादि के धर्म धारैं ।
कहुँ वैशि कै ब्रह्मविद्या विचारैं ॥ १८१ ॥
नुवाई जहां देखिये बक्क रागी ।
चलै पिप्पलै तिच्छु बुधै सभागी ॥
कपैं श्रीफलै पत्र हैं पत्र नीके ।
सुरामानुरागी सबै राम ही के ॥ १८२ ॥
जहां वारिदै वृन्द वाजानि साजैं ।
मयूरै जहां नृत्यकारी विराजैं ॥
भरद्वाज बैठे तहां विप्र मोहैं ।
मनो एकही बक्क लोकेश सोहैं ॥ १८३ ॥

लक्ष्मण—

[दंडक]

केशोदास मृगजबछेरु चूपैं वाघिनीन ,
चाटत सुरभि वाघ बालक बदन है ।

सिंहन की मटा^१ पैंचें कलम करनि करि,
 सिंहनको आसन गयंद को गहन है।
 फणी के फणन पर नाचत मुद्रित मोर,
 क्रोध न विरोध जहां मद न मदन है।
 बानर फिरत डोरे डोरे^२ अंध तापसनि,
 शिव को समाज कैधी ऋषि को सदन है ॥ १=२ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

जहां कोमलै बलकलै वास मोहै।
 जिन्हें अल्पधी कल्पसायी विमोहै ॥
 धरे शृंगला दुःख दाहें दुरंतै।
 मनो शंभुजी संग लोने अनंतै ॥ १=५ ॥

[मालिनी छंद]

प्रशमित रज राजें हरे वषां समै से।
 विरल जटन शाली स्वर्नदी कूल कैसे ॥
 जगमग दरशारै सुर के अंगु ऐसे।
 स्वर्ग नरक हता नाम आराम कैसे ॥ १=३ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

गहे केय पागै मियासां दजानों।
 कैपै शाप के आस ने गान मानों ॥

१—मटा=मदन के बाल, मटाळ =—डोरे डोरे=डोरिआये डोरिआये,
 साप बिये हुए।

मनों चंद्रमा : चंद्रिका चारु साजें ।

जरा सों मिले यों भरद्वाज राजें ॥ १८७ ॥

[दोहा]

भस्मत्रिपुंडक शोभिजै, वरणत बुद्धि उदार ।

मनो त्रिस्रोतासेत छुति, वंदत लगी लिलार ॥ १८८ ॥

[भुजंगप्रयात छन्द]

मनों शंक्राली लसै सत्य की सी ।

किधों वेदविद्या प्रभाई भ्रमी सी ॥

रमै गंग की ज्योति ज्यों जह नीकी ।

विराजै सदा शोभ वंतावली की ॥ १८९ ॥

[गीतिका छन्द]

भ्रुकुटो विराजति श्वेत मानहुँ मंत्र अद्भुत साम के ।

जिनके बिलोकत ही विलात अशेष कर्मज काम के ॥

मुखचास आश प्रकाश केशव भौर भीरन साजहीं ।

जनु साम के शुभ स्वच्छ अक्षर हँ सपक्ष विराजहीं ॥ १९० ॥

तनु कम्बु कण्ठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिये ।

अविनीत इंद्रिय निग्रही तिनके निबंधन जानिये ॥

उपवीत उज्ज्वल शोभिजै उर देखि यों बरखें सबै ।

सुर आपगा तपसिधु में जस श्वेतध्री दरशै अबै ॥ १९१ ॥

[दोहा]

फटिकमाल शुभ शोभिजै, उर ऋविराज उदार ।

अमल सकल भ्रुतिवरणमय, मनों गिरा को हार ॥ १९२ ॥

विप्रन दीजत हीन विधानै । जानहु ताकहँ तामस दानै ॥
विप्र न जानहु ये नर रूपै । जानहु ये सब विष्णु स्वरूपै ॥२०४॥

[तोमर छंद]

द्विज धाम देहिं जो जाइ । यहु भाँति पूजि सुरार ॥
कहु नार्हिनै परिमान । कहिये सो उत्तम दान ॥२०५॥
द्विज को जो देत बालाइ । कहिये सो मध्यम राइ ॥
गुनि याचना मिस दानु । अति हीन ताकहँ जानु ॥२०६॥

[दोहा]

प्रतिदिन दीजत नेम सों, ताकहँ नित्य बखान ॥
कालहिँ पाइ जो दीजिये, सो नैमित्तिक दान ॥ २०७ ॥

[तोटक छंद]

पहिले निजघर्तिन देहु अथै । पुनि पावहिं नागर लोग सबै ॥
पुनि देहु सबै निज देशिन को । उबरो धन देहु विदेशिन को ॥२०८॥

[दोधक छंद]

दान सकाम अकाम कहे हैं । पूरि सबै जग मांझ रहे हैं ॥
इच्छित ही फल होत सकामें । राम निमित्त ते जान अकामें ॥२०९॥
दान ते दक्षिण धाम बखानो । धर्म निमित्त ते दक्षिण जानो ।
धर्म विरुद्ध ते धाम गुनौ जू । दान कुदान सबै ते सुनौ जू ॥२१०॥
देहु सुदान ते उत्तम लेखो । देहु कुदान तिन्है जनि देखो ॥
छाँडि सबै दिन दानहिं दीजै । दानहिं ते सयफे मत लीजै ॥२११॥

(१७१)

[दोहा]

केशव दान अनंत हैं, वनें न काहू देत ॥

यहै जानि भुव भूप सब, भूमि दान ही देत ॥ २१२ ॥

[तोटक छंद]

राम—हनुमंत बली तुम जाहु तहां ।

मुनि वेप भरतथ वसंत जहां ॥

ऋषि के हम भोजन आजु करैं ।

पुनि प्रात भरतथहि अंक भरैं ॥ २१३ ॥

॥ इति लंका कांड ॥

उत्तर कांड

[चतुष्पदी छंद]

हनुमंत विलोके भरत अशोके अंग सकल मलधारी ।
 बकला पहिरे तन शीश जटा गण हैं फल मूल अहारो ॥
 बहु मंत्रिनगण में राज काज में सब सुख सों हित तोरे ।
 रघुनाथ पादुका तन मन प्रभु करि सेवत अंजुलि जेरे ॥१॥

हनुमान— भरत प्रति राम संदेश

सब शोकनि छांडी भूपण मांडी कीजे विधिधि बधाये ।
 सुर काज सँवारे रावण मारे रघुनन्दन घर आये ॥
 सुप्रोव सुयोधन सहित विभीषण सुनहुँ भरत शुभ गीता ।
 जय कीरति ज्यों संग अमल सकल अंग सोहत लदमण सीता ॥२॥

[पदटिका छंद]

सुनि परम भावती भरत वात ।
 भये सुख समुद्र में मगन गात ॥
 यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईश ।
 अथ कहा कह्यो मोसन कपीश ॥ ३ ॥
 जैसे चकोर लीलै अंगार ।
 त्यहि भूलि जाति सिगरी सँभार ।
 जी उठत उवत ज्यों उदधिनंद^१ ।
 त्यों भरत भये सुनि रामचन्द्र ॥ ४ ॥

१—उदधिनंद=चंद्रमा ।

ज्यों सोइ रहत सब सूरहीन ।

अति हँ अचेत यद्यपि प्रवीन ॥

ज्यों उवत उठत हँसि करत भोग ।

त्यों रामचन्द्र सुनि अवध लोग ॥ ५ ॥

[मालिनी छंद]

जहँ तहँ गज गाजँ दुंदुभी दीह बाजँ ।

बहु वरण पताका स्यंदनाशवादि राजँ ॥

भरत सकल सेना मध्य यों वेप कीने ।

सुरपति जनु आये मेघमालानि लीने ॥ ६ ॥

सकल नगरवासी भिन्न सेनानि साजँ ।

रथ सुगज पताका भुंडभुंडानि राजँ ॥

थलथल सब शोभँ शुभ्र शोभानि छाई ।

रघुपति सुनि मानों औधि सी आज आई ॥ ७ ॥

[चामर छंद]

अत्र तत्र दास ईश व्योम ते विलोकहीं ।

वानरालि रीछराजि दृष्टि सृष्टि रोकहीं ।

ज्यों चकोर मेघ ओघ मध्य चंद्र लेखहीं ।

भानुके समान जान त्यों विमान देखहीं ॥ ८ ॥

राम भरत मिलाप

[मदनमनोहर दंडक]

आवत विलोकि रघुवीर लघु वीर तजि

व्योम गति भूतल विमान तव आहयो ।

राम पद पद्म मुख सद्य कहँ बंधु युग
दौरि तय पदपद समान मुख पाइयो ॥
चूमि मुख संधि शिर अँक रघुनाथ धरि
अधु जल लोचननि पेखि उर मारयो ।
देव मुनि वृद्ध परसिद्ध सब सिद्ध जन
हर्षि तन पुष्य बरयानि बरयारयो ॥ ६ ॥

[दोहा]

भरत चरण लक्ष्मण परे, लक्ष्मण के शत्रुघ्न ।
साँता पग लागत दियो, आशिय शुभ शत्रुघ्न ॥ १० ॥
मिले भरत अरु शत्रुघ्न, सुग्रीवहि अकुतार ।
बहुरि विभीषण को मिले, अंगद को मुख पाइ ॥ ११ ॥

[आभीर छंद]

जामवंत नल नील । मिले भरत शुभ शील ॥
गवय गयाक्ष गयंद । कपिकुल सब मुखकद ॥ १२ ॥
अपि वशिष्ठ को देखि । जन्म सफल करि लेंधि ॥
राम परे उटि पाय । लक्ष्मण सहित सुभाय ॥ १३ ॥

[दोहा]

त सुग्रीव विभीषणहि, करि करि विनय अनंत ॥
पाँयन परे वशिष्ठ के, कपिकुल बुधि बलवंत ॥ १४ ॥

राम—

[पद्धटिका छंद]

सुनिजै वशिष्ठ कुलदृष्टदेव । इन कपिनायक के सकलभेय ॥
हम बृद्धतटे विपदा समुद्र । इन राखि लियो संग्राम दूर ॥ १५ ॥

अवध प्रवेश

[सुंदरी छंद]

अवधपुरी कहँ राम चले जब । ठौरहिँ ठौर विराजत हँ सब ॥
भरत भये शुभ सारथि शोभन । चमर धरे रविपुत्र विभीषन १६॥

[तोमर छंद]

लीनी छरी दुहुँ वीर । शत्रुघ्न लक्ष्मण धीर ॥
टारें जहां तहँ भीर । आनंदयुक्त शरीर ॥ १७ ॥

[दोधक छंद]

भूतल हू दिवि भीर विराजैं । दीह दुहुँ दिशि दुन्दुभि वाजैं ॥
भाट भले विरदावलि गावैं । मोद मनो प्रतिविम्ब बढ़ावैं ॥१८॥
भूतल की रज देव नशावैं । फूलन की वरपा वरपावैं ॥
हीन निमेष सबै अवलोकैं । होड़ परी बहुधा दुहुँ लोकैं ॥१९॥

अवध वएण

[तारक छंद]

सिगरे दल औधपुरी तव देखी ।
अमरावति ते अति सुंदर लेखी ॥
चहुँ और विराजति दीरघ खाई ।
शुभ देवतरंगिनि सी फिरि आई ॥ २० ॥
अति दीरघ कंचन कोट विराजैं ।
मणि लाल कंगूरन की रुचि राजैं ॥

पुर सुंदर मध्य लसै छवि छाये।
परिवेप^१ मनो रवि को किरि आये ॥ २१ ॥

[दोहा]

विधिधि पताका शोभिजं, ऊंचे केयोदास।
दिवि देवन के शोभिजं, मानहुं व्यजन विलास ॥ २२ ॥

[चित्रय छंद]

चढ़ी प्रतिमंदिर शोभ बड़ी,
तरुणी अधलोकन को रघुनन्दनु।
मनो गृहदीपनि देहधरे,
मुकिधो गृहदेवि विमोहति हँ मनु।
किधो कुलदेवि दिव्य अति केशव,
के पुरदेविन को हुलभ्यो गनु।
नहीं मो नहीं यहि भांति लसै,
दिवि देविन को मड घालतिहँ मनु ॥ २३ ॥

[दोहा]

अति ऊंचे मंदिरनपर, चढ़ी सुंदरी साधु ॥
दिवि देवन को करनि हैं, मनु आतिथ्य अगाधु ॥ २४ ॥

[नोटक छंद]

नरनारि भली सुरनारि सबै । नितकी न परै पहिचानि तबै ॥
मिलि फलन की बरपें बरपा । अग्गावतिहँ जय के करपा ॥ २५ ॥

१- परिवेप = वेप ।

[पद्मावती छंद]

रघुनंदन आये सुनि सब धाये पुर जन जैसे जैसे ॥
दर्शन रस भूले तन मन फूले वरणे जाहि न जैसे ।
पति के संग नारी सब सुखकारी रामहि यों छग जोरी ॥
जहँ तहँ चहुँओरनि मिली शकोरनि चाहति चंद चकोरी ॥ २६

[पद्धटिका छंद]

बहु भांति राम प्रति द्वार द्वार ।
श्रुति पूजत लोग सबै उदार ॥
यहि भांति गये नृपनाथ^१ गेह ।
युत सुंदरि सोदर स्यां सनेह ॥ २७ ॥

[दोहा]

मिले जाय जननीन को, जवहीं श्री रघुराह ॥
करुणा रस अद्भुत भयो, मोपै फह्यो न जाइ ॥ २८ ॥
सीता सीतानाथ जू, लक्ष्मण सहित उदार ।
सवन मिले सब के किये, भोजन एकहि बार ॥ २९ ॥

[सोरठा]

पुरजन लोग अपार, यहई सब जानत भये ॥
हमहीं मिले अगार^२, आये प्रथम हमारेही ॥ ३० ॥

[मदनहरा छंद]

सँम सीता लक्ष्मण श्रीरघुनंदन
मातन को शुभ पाइ परे सब दुःख हरे ॥

१—नृपनाथ=राजा दशरथ । २—अगार=सब से अगाड़ी (पहले) ।

आँसुन अन्हघाये भागनि आये ।
जीवन पाये अँक भरे अरु अँक घरे ॥
ते बदन निहारै सरयसु वारै* ।
देहि सयै सबहीन घनो अरु लोहिं धनो ॥
तनमन न सँभारै यहै विचारै* ।
भाग बड़ो यह है अपनो किधौं है सपनो ॥ ३१ ॥

[स्वागता छंद]

शम प्रति होति बधाई । लोक लोक तिनकी धुनि धारै
दाम्ब देखि कपि अद्भुत लेखै । जाहिं यत्र तित रामहिं देखै ॥३॥
दौरि दौरि कपि रावर^३ आवै । बार बार प्रति धामनि धारै
देखि देखि तिनको दै तारी । भांति भांति बिहसै पुनारी ॥३॥

राम सुमित्रां संवाद

[दोहा]

राम—इन सुमीध विभीषण, अंगद अरु हनुमान ॥
सदा भरत शत्रुघ्न समं, माता जी मैं जान ॥ ३४ ॥

[[सेरठा]

सुमित्रा—प्राणनाथ रघुनाथ, जिय की जीवनमूरि हो ॥
सदमण है तुम साथ, जामियहु चूक परी जो कहु ॥३॥

[दंडक]

राम—पौरिया कहौं कि प्रतीहार कहौं किधौं प्रभु,
पुत्र कहौं मित्र किधौं मंत्री सुखदानि ये ।

३—रावर=रत्ननास ।

सुमट कहैं कि शिष्य दास कहैं किधौं दूत,
 केशोदास हाथ को हथ्यार उर आनिये ।
 नैन कहैं किधौं तन मन किधौं तनत्राय,
 बुद्धि कहैं किधौं बल विक्रम बखानिये ।
 देखिवे को एक हैं अनेक भांति कीन्ही सेवा,
 लखन के मात कौन कौन गुण मानिये ॥ ३६ ॥

श्रीराम कथित राज्यश्री-निंदा

अगस्त्य— [दोहा]

मारे अरि पारे हित, कौन हेत रघुनंद ॥
 निरानंद से देखियत, यद्यपि परमानंद ॥ ३७ ॥

श्रीराम— [तोमर छंद]

सुनि ज्ञान मानसहंस । जप योग जाग प्रशंस ॥
 जग मांझ है दुखजाल । सुख है कहां यहि काल ॥ ३८ ॥
 तहँ राज है दुख मूल । सब पाप को अनुकूल ॥
 अब ताहि लै ऋषिराय । कहि कौन नर्कहि जाय ॥ ३९ ॥

[चौपाई]

सौंदर मंत्रिन के जु चरित्र । इनके हमपै सुनि मखमित्र^१ ॥
 इनहीं^२ लगे राज के काज । इनहीं ते सब हेत अकाज ॥ ४० ॥
 राजभार नल भैयनि दयो । छल बल छीनि सबै तिन लयो ॥
 जत्र लीन्हों सब राज विचारि । नलदमयंती दियोनिकारि ॥ ४१ ॥

१—मखमित्र=चापि २—इनहीं लगे=इन्हों के वास्ते ।

(१८०)

राजा सुरेय राज की गाथ । सौपी सब मंत्रिन के हाथ ।
संतत मृगया लीन बिचारि । मंत्रिन राजा दियो निवारि । १२४
राजधी अति चंचल तात । तांहु की मुनि लीजै बल ।
यौवन अरु अधिषेकी रंग । विनस्यी कौन राजधी मंग । १२५
शास्त्र सुजलहुँ घोषत तात । मलिन होते अति ताके गत ।
बद्यपि हँ अति उज्ज्वल दृष्टि । तदपि सुजंति रागन की सृष्टि । १२६
महापुरुष^१ सौ जाकी प्रीति । हरति सो कौन्हा मारत रीति ।
विषय मयीचिकानि की ज्योति । इंद्रीहरिष हारिणो होनि । १२७
गुरु के वचन अमल अनुकूल । मुनित होत अवरुन को दूब ।

^२ यलित नवयसन सुदेश । भिदत नहीं जल ज्यो उपदेश । १२८
मित्रन हू को मतो न लेति । प्रतिशब्दक^३ ज्यो उत्तर देति ।
पहिले मुने न शोर मुनंति । माती करेजी ज्यो न गनंनि । १२९

[दोहा]

धर्मवीरता विनयता; सत्यशील-आचार ।
राजधी न गने कहू, वेद पुराण विचार ॥ ४८ ॥

चौपारि]

सागर में बहुकाल जो रही । सीत घक्रता शशि ते लही ।
सुर तुरैंग चरसनि ते तात । सीधी चंचलता की यात ॥ ४९ ॥

१—महापुरुष=ईश्वर । २—मैत्र=मीत्र, मैत्र यज्ञित यजन=मीमंसाक
मीमंसाकम्पेड । ३—प्रतिशब्दक=द्वैतकर आरं हुं आराज (जैसे बुद्ध के
आती है) ।

कालकूट ते मोहन रीति । मणिगण ते अति मिष्ठुर प्रीति ॥
मदिरा ते माधकता लई । मंदर उदर भई भ्रमभई ॥ ५० ॥

[दोहा]

शेष दई बहुजिह्वता, बहुलोचनता चारु ॥
अप्सरानि तैं सीखियो, अपर पुरुष संचारु ॥ ५१ ॥

[चौपाई]

दृढ गुन बाँधेहू बहुभाँति । को जानै केहि भाँति विलाति ॥
गज घोटक भट कोटिन अरैं । खड्ग लता पंजर हू परैं ॥ ५२ ॥
अपनाइति^१ कीन्हे बहुभाँति । को जाने कित हू भजिजाति ॥
धर्मकोस मंडित शुभ देश । तजति भ्रमरि ज्यों कमल नरेश ॥ ५३ ॥
यद्यपि होइ शुद्धमति सत्तु^२ । फिरै पिशाची ज्यों उनमत्तु ॥
गुनवंतनि आलिंगति नहीं । अपवित्रनि ज्यों छाँड़ति तहीं ॥ ५४ ॥
गूरनि नाशति ज्यों अहि देखि । कंटक ज्यों बहु साधुन लेखि ॥
सुधासेदरा यद्यपि आप । सबहीं ते अति कटुक प्रताप ॥ ५५ ॥
यद्यपि पुरुषोत्तम की नारि । तदपि सकल खलजन अनुहारि ॥
हितकारिन को अति द्वेषिनी । अहित लोग की अन्वैपिनी ॥ ५६ ॥
मन मृग को सुवधिक की गीति । विषयवेलि को वारिद रीति ॥
मद पिशाचिका की सी अलो । मोह नौद की शय्याभली ॥ ५७ ॥
आशोविष^३ दोषन को दरो । गुण सतपुरुषन कारण छुरी ॥
फल^४ हंसन की मेवावली । कपट नृत्यकारी को थली ॥ ५८ ॥

१—अपनाइति=अपनपौ, गाढ़ा प्रेम । २—सत्तु=पाणी, मनुष्य ।

३—आशोविष=सर्प । ४—फल=चैन, आराम ।

(१८२)

[दोहा]

वाम काम करि की किधौं, कोमल कदलि सुवेप ।
घोर धर्म द्विजराज को, मनो राहु की रेप ॥ ५१ ॥

[चौपाई]

मुखरोगी ज्यों मौने रहै । वात वलाय एक द्वै कहै ।
बंधुवर्ग पहिचाने नहीं । मानों सध्रिपात है गहौं ॥ ६० ॥
महामंत्रहु होत न बोध । इसी काल अहि करि जनु बोध ।
पान बिलास उदित आतुरी । परदारा गमनै चातुरी ॥ ६१ ॥
मृगया यहै शूरता बढ़ी । बंदी मुखनि चायसों पढ़ी ॥
जो केहुं चितवै यह दया । पात कहै तो बढ़ियै मया ॥ ६२ ॥
दरगुन दीवोई अतिदान । हँसि धोलै तौ बड़ सनमान ॥
जो केहु सों अपना कहै । सपने की सी पदवी लहै ॥ ६३ ॥

[दोहा]

जोई अति हित को कहै, सोई परम अमित्र ।
सुखवक्तार जानिये, संतत मंत्री मित्र ॥ ६४ ॥

[चौपाई]

[कहाँ कहां लागि ताके साज । तुम सय जानतहौ ऋषिराज
ऐसी शिष भूरति मानिये । तैसी राजधी जानिये ॥ ६५ ॥
साधधान हँ सेवै जाहि । सांची देत परम पद ताहि ।
कितने नप याके घर मये । पेलि स्वर्गमग नकहि मये ॥ ६६ ॥

राम विरक्तिवर्णन

[अमृतगति छंद]

सुमतिमहाऋषि सुनिये । जगमह सुख न गुनिये ।
मरणहि जीव न तजहीं । मरिमरिजन्मन भङ्गहीं ॥ ६७ ॥
उदरनि जीवपरत है । वह दुख सों निसरत है ॥
अंतहु पीर अनंतहीं । तन उपचार सहतहीं ॥ ६८ ॥

[दोषक छंद]

पेच भली न कछु जिय जानै ।
लै सब वस्तुन आनन आनै ॥
शैशव ते कछु होत बड़ेई ।
खेलत हैं ते अयान चड़ेई ॥ ६९ ॥
है पितुमातनि ते दुख भारे ।
श्रीगुरु ते अति होत दुखारे ॥
भूखन प्यास न नींद न जोवै ।
खेलन को बहुभाँतिन रोवै ॥ ७० ॥
जारति चित्त चिता दुचितार्ई ।
दोह त्वचा अहि कोप चघार्ई ॥
काम समुद्र भूकोरनि भूल्यो ।
यौवन जोर महाप्रभु भूल्यो ॥ ७१ ॥
धूम सो नील निचोल मैं सोहै ।
जाइ छुई न विलोकत मोहै ॥

(१२४)

पावक पाप शिखा बनचापी ।
जारति है नर को परनारी ॥ ७२ ॥
बंक हियेन प्रमा संरसी सी ।
कर्म^१ काम कछु परसी सी ॥
कामिनि काम की डोरि प्रसी सी ।
मीन मनुष्यन को बनसी सी ॥ ७३ ॥

[विजय छंद]

बँचत लोभ दशौ दिशि को महि
मोह महा इत पासि कै डारे ।
ऊंचे ते गर्व गिरावत क्रोध सो
जीयहि लहर^२ लावत भारे ।
पेसं मों कोढ़ की छात्रु^३ ज्यों केशव
मारत काम के बाण निनारे^४ ।
मारत पाँच करे पँचकूटहि^५
कासों कहैं जगजीव विचारे ॥ ७४ ॥
भूलत है कुलधर्म सयै तयही
जबही यह आनिप्रसैजू ।

१—कर्म=पिसान वा चारा जो बंसी में लगाया जाता है । २—लहर=
झगर, लुआठ । ३—कोढ़ की छात्रु=दुःख को और अधिक बढ़ानेवाली
वस्तु । ४—निनारे=भारेही । ५—पँचकूट=पाँच जनों का गुह वा समूह ।

केशव वेद पुराणन कोन सुनै
समुझै न त्रसै न हँसै जू ॥
देवनि ते नरदेवनि ते नर ते
वर वानर ज्यों बिलसै जू ।
यंत्र न मंत्र न मूरि गनै जग
यौवन काम पिशाच वसैजू ॥ ७५ ॥

ज्ञाननि के तनत्राननि को कहि
फूल के बाणनि वेधत को तो ।
बाइ लगाइ विवेकन को वह
साधक को कहि बाधक हो तो ।
श्रौर को केशव लूटतो जन्म
श्रनेकन के तपसान को पोतो^१ ।
तौ मम लोक सबै जग जातो जो
काम बड़ो बटपार^२ न होतो ॥ ७६ ॥

[मकरंद विजया छंद]

कंपै वर वानी डगै उर डीठि
तुचाति कुचै^३ सकुचै मति बेली ।
नवै नव ग्रीव थकै गति केशव
बालक ते संगही संग खेली ॥

१—पोतो= (पोत) जहाज । २—बटपार=राक्षसन, डाकू, लुटेरा ।
३—कुचै=सिकुड़ती है ।

(१८६)

लिये सब आधिन व्याधिन संग
जरा जय आवै ज्यरा^१ की सहेली ।
मगै सब देह दशा जिय साथ
रहै दुरि दीरि दुराशा अकेली ॥ ७७ ॥
बिलोकि शिरोरुह श्वेत समेन
तनोरुह कोविद्यों गुण गायो ।
उटे कियों आयु के औधि के अँकुर
मूल कि शुष्क समूल नभायो ॥
जरै कियों केशव व्याधिन की कियों
आधि के आखर अंत न पायो ।
जरा सरपंजर जीव जरैउ कि
जरा जरकंवर^२ मों पहिरायो ॥ ७८ ॥

[मनोहर विजया, छंद]

दिनहीं दिन बाढत जाइ हिषे
जरि जाइ समूल सो औधि खैहै ।
कियों माहिके साथ अनाथ ज्यों केशव
आवत जात सदा दुख सैहै ॥
जग जाको तू ज्योति जगै जड़ जीव
रे कैसेहु ता पहुँ जान न पैहै ।
मुनि बालदशा गरुं ज्वानी गरुं
जरि जैहै जराऊ दुराशा न जैहै ॥ ७९ ॥

१—जरा=आयु । २—जरकंवर=जरी का दुसाका

[दोहा]

जहां भामिनी भोग तहँ, विन भामिनि कहँ भोग ।
 भामिनि छूटे जग छुटै, जग छूटे सुखयोग ॥ ८० ॥
 जोई जोई जो करै, अहँकार के साथ ।
 स्नान दान तप होम जप, निष्फल जानौ नाथ ॥ ८१ ॥

[तोटकछंद]

जिय मांऊ अहंपद, जो दमिये ।
 जिनहीं जिनहीं गुण श्रीरमिये ॥
 तिनहीं तिनहीं लखि लोभ डसै ।
 पट तंतुनि उंदुर^१ ज्यों तरसै^२ ॥ ८२ ॥

[विजयछंद]

दान सयाननि के कलपद्रुम
 दूटत ज्यों ऋण ईश के मांगे ।
 सूखत सागर से सुख केशव ज्यों
 दुख श्रीहरि के अनुरागे ॥
 पुण्य विलात पहारन से पल ज्यों
 अघ राघव की^३ निशि जागे ।
 ज्यों द्विजदोष ते सँतति नाशति
 त्यों गुण भाजत लोभ के आगे ॥ ८३ ॥

१—उंदुर=चूड़ा, मूसा । २—तरासता है=काटता है । ३—राघव की
 निशि=रामनवमी की रात्रि ।

(१००)

दान दया शुभशोख सखा विमुक्तै गुण मित्रुक को विमुक्तवै ।
साधु सुधी सुरमी सय केशव भाजि गई भ्रम भूरि मज्जावै ॥
सज्जन संग बहुरे डरै विडरै घृपमादि प्रवेश न पावै ।
बार^१ बड़े अथवाव बँधे उरमंदिर बाल गोंविन्द न आवै ॥२३॥

[दोहा]

आंखिन आदृत आंधरो, जीव करै बहुमांति ॥
घोरन घोरज विन करै, तृष्णा कृष्णा राति ॥ २४ ॥
तृष्णा कृष्णा पट्टपदी, हृदय कमल में बाम ॥
मत्त क्षंति गलगंडयुग, नर्क अनर्क विज्ञास ॥ २६ ॥

[विजय छंद]

कीन गर्नै यहि लोक तराँन^१ विलोकि विलोकि जहाजन बोरै ।
लाज विशाल लता लपटौ तन घोरज सत्य तमालनि तोरै ॥
बंबकता अपमान अमान अलान^२ भुजंग मयानक कृष्णा ॥
पाटु बड़ो कहुँ बाटु न केशव क्यों तरिजाह तरंगिनि तृष्णा ॥३॥
पैरत पापपयोनिधि में मन मूट मनाज जहाज बड़ोरै ।
पेलत ऊन तत्रै जड़ जीव जऊ बड़वानन कोब डड़ोरै^३ ॥
भूछ तरंगिनि में उरकै सु इते पर लोम प्रवाह बड़ोरै ।
बूढत दी तेहि ते उवरै कहि केशव काहे न पाठ पड़ोरै ॥ ३॥

१—बार=द्वार । २—नागी=गाव । ३—पाटु=कौड़ाई (२३। ३०)
४—बड़ोरै=जजा हुआ है ।

[दोहा]

जो कहँ सुखभावना, काहू को जग होति ।
 काल आखु^१ पटतंतु ज्यों, तवहीं काटत ज्योति ॥ ४९ ॥
 ब्रह्म विष्णु शिव आदि दै, जेतने दृश्य शरीर ।
 नाशहेतु धावत सबै, ज्यों बड़वानल नीर ॥ ६० ॥

[सुंदरी छंद]

दोपमयी जो दवारि लगी अति ।
 देखतही त्यहि ते जो जरी मति ॥
 भोग की आश न गूढ़ उजागर ।
 ज्यों रज सागर में मुनि नागर ॥ ६१ ॥

[विजया छंद]

माछी कहै अपना घर माछरु^२ मूसो कहै अपना घर पेसो ।
 कोने घुसी कहै घूसि घिरौरी^३ विलारि औ ब्याल चिले महँ वैसो ॥
 कीटक श्वान सो पक्षि औ भिलुक भूत कहँ भ्रमजाल है जैसे ।
 हौं हँ कहौं अपना घर तैस्यहि ता घर सौं अपना घर कैसो ॥ ६२ ॥

[सुंदरी छंद]

जैसहि हौं अब तैसहि हौं जग ।
 आपद सम्पद के न चलीं मग ॥
 एकहि देह तियाग बिना मुनि ।
 हौं न कछु अभिलाष करौं मुनि ॥ ६३ ॥

१—आखु=चूना । २—माछरु=मच्छर । ३—घिरौरी=घरों के कोनों पर मट्टी का घर बनाने वाली एक प्रकार का भृंगी वा छिपकिली, विस्तुरिया ।

(१६०)

जो कहु जीवउधारण फो मत ।
जानत हो तौ कही तनु है रत ॥
यों कहि मौन गही जगनायक ।
केशवदास मनो बच कायक ॥ ६४ ॥

वशिष्ट कथित मुक्तिमार्ग

[पद्धटिका छंद]

वशिष्ट—तुम आदि मध्य श्रवसान एक ।
श्रव जीव जन्म समुक्तो अनेक ॥
तुमहीं जो रची रचना विचारि ।
त्यहि कौन भांति समुक्तों मुरारि ॥ ६५ ॥
सब जानि ब्रूमियत मोहिं राम ।
सुनिये सो हीं जग ब्रह्म नाम ॥
तिनके अशेष प्रतिविम्ब जाल ।
त्यह जीव जानि जग में कृपाल ॥ ६६ ॥

[निशिपालिका छंद]

लोम मद मोह बश काम जवहीं भयो ।
भूलि गये रूप निज बांधि तिनसो गयो ॥
राम—ब्रूमियत बात यह कौन विधि उद्धरे ।
वशिष्ट—वेद विधि शोधि बुध यत्न बहुधा करै ॥ ६७ ॥

[दोहा]

राम—जित लैजैहै वासना, तित तित हैहै सोन ।
यस कही कैसे करै, जीव यापुरो दीन ॥ ६८ ॥

(१६१)

[दोषक छंद]

वशिष्ट—जीवन की युग भांति दुराशा ।
होति शुभाशुभ रूप प्रकाशा ॥
यत्न से सं शुभपन्थ लगावै ।
तौ अपनो तबहीं पद पावै ॥ १६६ ॥
हैं मन ते विधि पुत्र उपायो ।
जीव उधारण मंत्र वतायो ॥
है परिपूरण ज्योति तिहारी ।
जाइ फही न सुनी न निहारी ॥ १०० ॥

[दोहा]

ताकी इच्छा ते भये, नारायण मतिनिष्ठ ।
तिनते चतुरानन भये, तिनते जगत प्रतिष्ठ ॥ १०१ ॥

[दोषक छंद]

जीव सबै अवलोकि दुघारे ।
आपन चित्त प्रयोग विचारे ॥
मोहि सुनाये तुम्हें ते सुनाऊं ।
जीव उधारण गीति सु गाऊं ॥ १०२ ॥

[दोहा]

मुक्तिपुरी दरवार फे, चारि चतुर प्रतिहार^१ ।
साधुन को सतसंग सम,^२ अरु संतोष विचार ॥ १०३ ॥

यह जग चक्रान्यूह किय, कज्जल कलित अगाधु ।
तामहँ पैठि जो नीकसै, अकलंकित सो साधु ॥ १०४ ॥

[दोषक छंद]

देखतहुँ एक काल दियेहुँ ।
घात कहै मुनै भोग कियेहुँ ॥
सोयत जागत नेक न सोभै ।
सो समता सबही महँ शोभै ॥ १०५ ॥
जी अभिलाष न काहु की आवै ।
आये गये सुख दुःख न पावै ॥
लै परमानंद सो मनलावै ।
सो सब मांझ सँतोष कहावै ॥ १०६ ॥
आयो कहाँ अब हौ कहि को हौ ।
ज्यो अपना पद पाऊँ सो टोहौ ॥
बंधु अबंधु हिये महँ जानै ।
ता कहँ लोग विचार बखानै ॥ १०७ ॥
चारि में एकहु जो अपनावै ॥
तो तुम पै प्रभु आवन पावै ॥

राम—ज्योति निरोह निरंजन माना ।

तामहँ क्यों अपि इच्छु बखानी ॥ १०८ ॥

[दोहा]

वशिष्ठ—सकल शक्ति अनुमानिये, अद्भुत ज्योति प्रकाश ।

जाते जग को होत है, उत्पति पिति अकनाश ॥ १०९ ॥

[दोधक छंद]

धीराम—जीव बँधे सब आपनि माया ।
कीन्हें कुकर्म मनो बच काया ॥
जीवन चित्त प्रबोधन आनो ॥
जीवनमुक्त के भेद बखानो ॥ ११० ॥

वशिष्ट—बाहेरहूँ अति शुद्ध हियेहूँ ।
जाहि न लागत क^० कियेहूँ ॥
बाहेर मूढ सो अंत सयानो ।
ताकहँ जीवनमुक्त बखानो ॥ १११ ॥

[दोहा]

आपुन सो अवलोकिये, सबही युक्तायुक्त ।
अहं भाव मिटिजाहि जो, कौन बद्ध को मुक्त ॥ ११२ ॥

[दोधक छंद]

धीराम—सो सिगरे गुण होत सो जानो ।
स्थावर जीवनमुक्त बखानो ॥
वशिष्ट—जानि सबै गुण दोषन छंडै ।
जीवनमुक्तन के पद मंडै ॥ ११३ ॥

[दोहा]

राम—साधु कहावत करत हैं, जग में सब व्यौहार ।
तिनको मीचु न ह्वै सकै, फहि प्रभु कौन विचार ॥ ११४ ॥

[पशुटिका छंद]

पशुटिका—जग जिनको मन तब चरण लीन ।
तन तिनको मृत्यु न करति लीन ॥
तेहि क्षणहीं क्षण दुख क्षण होत ।
जिय करत अमित आनंद उदोत ॥ ११५ ॥
जो चाहै जीवन अति अनंत ।
सो साथै प्राणायाम यंत्र ॥
शुभ रेचक पूरक नाम जानि ।
अथ कुम्भकादि सुखदानि मानि ॥ ११६ ॥
जो क्रमक्रम साथै साधु धीर ।
सो तुमहि मिलै याही शरीर ॥
राम—जग तुमते नहि सर्वज्ञ आन ।
अथ कहौ देव पूजा विधान ॥ ११७ ॥

[तारक छंद]

पशुटिका—हम एक समय निकसे तपसा को ।
तब जाइ भजे हिमवंतरसा^१ को ॥
पहु भांति कखो तप क्यों कहि आवै ।
शितकण्ठ प्रसन्न भये जग गावै ॥ ११८ ॥

[दंडक छंद]

ऊजरे उदार उर बासुकी विराजमान,
ह्वास्के समान आन उपमा न होहिये ।

१—हिमवंतरसा=हिमालय मूषि ।

शोभिजै जटान बीच गंगाजू के जल बुंद,
कुंद कीसी कली केशोदास मन मोहिये ॥
नख कीसी रेखा चद्र चन्दन सी चारुज,
अंजन शृंगार हू गरल रुचि रोहिये ।
सब सुखसिद्धि शिवा सोहै शिवजू के साथ,
जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहिये ॥ ११६ ॥

[तारक छंद]

महादेव—वरमाँगि कछु ऋषिराज सयाने ।
बहुभाँति चले तपपंथ पयाने ॥
घशिष्ठ—पुजवो परमेश्वर मो मन इच्छा ।
सिखवो प्रभु देवप्रपूजन शिखा ॥ १२० ॥

[दोहा]

शिव—रामरमापति देव नहिं, रंग न रूप न भेव ।
देव कहत ऋषि कौन को, सिखजं जाकी सेव ॥ १२१ ॥

[तोमर छंद]

घशिष्ठ—हम कहा जानहिं अश । तुम सर्वदा सर्वश ॥
अव देव देहु बताइ । पूजा कहौ समुझाइ ॥ १२२ ॥
शिव—सतचित्प्रकाश प्रभेव । तेहि वेद मानत देव ॥
तेहि पूजि ऋषि रुचिमंडि । सब प्राकृतन को छुंडि ॥ १२३ ॥
पूजा यहै उर आनु । निर्व्याज धरिये ध्यानु ॥
यो पूजि घटिका एक । मनु कियो याज अनेक ॥ १२४ ॥

(१६६)

जिय जान यहई योग । सब धर्म कर्म प्रयोग ॥
सब रूप पूजि प्रकाश । तव भये हमसे दास ॥
यह वचन करि परमान । प्रभु भये अंतर्दान ॥ १२५ ॥

[दोहा]

यह पूजा अद्भुत अग्नि, सुनि प्रभु त्रिभुवन नाथ ।
सयै शुभाशुभ वासना, मैं जायी निज हाथ ॥ १२६ ॥

[भूलना छंद]

यहि मांति पूजा पूजि जीव जो भक्त परम कहाइ ।
भव भक्तिरस भागीरथी महँ देहि दुखनि बहाइ ॥
पुनि महाकर्त्ता महान्यागी महामोगी होइ ।
अनि शुद्ध भाव रमै रमापति पूजिहै सब कोइ ॥ १२७ ॥

[दोहा]

राग द्वेष बिन कैसहुं, धर्माधर्म जो होइ ॥
हर्ष शोक उपजै न मन, कर्त्ता महा सोलोइ ॥ १२८ ॥
मोज अमोज न रत बिरत, नीरस सरस समान ।
भोग होइ अभिलाष बिन, महामोगता मान ॥ १२९ ॥
जो कहु आंखिन दोखये, वाणी बएयो जाहि ॥
महातियागी जानिये, भूडो जानै ताहि ॥ १३० ॥

[तोमर छंद]

जिय ज्ञान बहु व्योहार । अरु योग भोग विचार ॥
यहि मांति होइ जो राम । मिलिहँ सो तेरे घाम ॥ १३१ ॥

[सवैया]

निशिवासर वस्तुविचार करै मुख सांच हिये करुणा धनु है ।
अथ निग्रह संग्रह धर्मकथ परिग्रह साधन को गनु है ।
कहि केशव योग जगै हिय भीतर बाहेर भोगन सो तनु है ।
मनु हाथ सदा जिनके तिनको बनही घरहै घर ही वनु है ॥१३२॥

[दोहा]

लेइ जो कहिये साधु अन-लीन्हे कहिये वाम ॥

सबको साधन एक जग, राम तिहारो नाम ॥ १३३ ॥

राम—भोहिं न हुतो जनाइये, सबही जान्यौ आजु ॥

अव जो कहौ सो करि बनै, कहे तुम्हारे काज ॥ १३४ ॥

रामनाम महिमा

वशिष्ठ-

[स्वागता छंद]

चित्त मांझ जब आनि अरुभी । वात तात कहँ मै यह वूझी ॥
योगयाग करि जाहि न आवै । स्नान दान विधि मर्म न पावै ।
है अशक्त सब भांति विचारो । कौन भांति प्रभु ताहि उधारो ॥१३५॥

[भुजंगप्रयात छंद]

ब्रह्मा—जहीं सच्चिदानन्द रूपै धरेंगे ॥

सु त्रैलोक्य को ताप तीन्यों हरेंगे ।

कहैगो सवै नाम श्रीराम ताको ।

सदा सिद्ध है शुद्ध उच्चार जाको ॥ १३६ ॥

कहै नाम आधो सो आधो नशावै ।

कहै नाम पूरो सो वैकुण्ठ पावै ॥

(१६ =)

सुधारैं दुहँ लोक को घर्ण दोऊ ।
दिये छद्म छांड़ै कहै घर्ण कोऊ ॥ १३७ ॥
सुनावै सुनै साधु संगी बहावै ।
कहावै कहै पाप पुंजै नशावै ॥
स्मरावै स्मरै वासना जारि डारै ।
तजै छद्म को देवलोकै सिधारै ॥ १३८ ॥

[तामरस छंद]

जब सय वेद पुराण नशैहैं । जप तप तीरथहु मिटिजैहैं ॥
द्विज सुरभी नहिं कोउ विचारै । तब जग केवल नाम उधारै ॥ १३९ ॥

[दोहा]

मरणकाल काशी विषे, महादेव निजघाम ॥
जीवन को उपदेशिहैं, रामचन्द्र को नाम ॥ १४० ॥
मरणकाल कोऊ कहै, पापी होइ पुनीत ॥
सुखही हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत ॥ १४१ ॥
रामनाम के नृत्य को, जानत वेद प्रभाव ॥
गंगाधर कै धरणिधर, बालमीकि मुनिराव ॥ १४२ ॥

रामतिलकोत्सव

[दोधक छंद]

सातहु सिधुन के जल रूरे । तीरथजालनि के पय पूरे ॥
कंचन के घट वानर लीने । आइ गये हरि आनंदभीने ॥ १४३ ॥

[दोहा]

सकल रत्नमय मृत्तिका, शुभा औषधीःश्लेष ॥
सातद्वीप के पुष्प फल, पल्लव रस सविशेष ॥ १४४ ॥

[दोषक छंद]

आंगन हीरन को मनमोहै ॥ कुंकुम चन्दन चर्चित सोहै ॥
है सरसी सम शोभप्रकाशी । लोचन मीन मनोज विलासी ॥ १४५ ॥

[दोहा]

गजमोतिनयुत शोभिजै, मरकतमणि के थार ॥
उदक बुन्द सौं जनु लसत, पुरइनिपत्र अपार ॥ १४६ ॥

[विशेषक छंद]

भांतिन भांतिन भाजन राजत कौन गनै ।
ठौरहि ठौर रहे जनु फूलि सरोज घनै ॥
भूपन के प्रतिबिम्ब विलोकत रूप रसे ।
खेलत है जल मांझ मनो जलदेव बसे ॥ १४७ ॥

[पदट्टिका छंद]

मृगमद मिलि कुंकुम सुरभिनीर ।
घनसार सहित अम्बर उसीर ।
वसि केशरि सों बहु विविध नीर ।
क्षिति छिरके चर थावर शरीर ॥ १४८ ॥
बहु वर्ण फूल फल दल उदार ।
तहँ भरि राखे भाजन अपार ॥
तहँ पुष्प वृक्ष शोभैं अनेक ।

मणिवृत्त स्वर्णकेवृत्त एक^१ ॥ १४६ ॥
त्यहिं उपर रच्यो एकै बितान ।
दिवि देखत देवन के विमान ।
दुहुँलोक होत पूजा विधान ।
अरु नृत्य गीत घादित्र गान ॥ १४० ॥
तरु ऊमरि^२ को आसन अनूप ।
बहु रचित हेममय विश्वरूप ॥
तहँ बैठे आपुन आइ राम ।
सियसहित [मनो रतिरुचिरकाम ॥ १४१ ॥
जनु घनदामिनि आनन्द देत ।
तदकल्प कल्पयल्ली समेत ।
है कैधों विद्या सहित ज्ञान ।
कै तपसंयुत मन सिद्धि जान ॥ १४२ ॥
कै विक्रम श्रुत कीरति प्रवीन ।
कै श्रीनारायण शोभलीन ॥
कै अनि शोभित स्याहा सनाथ ।
कै सुन्दरता शृंगार साथ ॥ १४३ ॥

[सुंदरी छंद]

केशव शोभन द्वय विराजत ।
जा कहँ देखि मुधाधर लाजत ॥

(२०१)

शोभित मोतिन के मति के गन ।

लोकन के जनु लागि रहे मन ॥ १५४ ॥

[दोहा]

शोतलता शुभता सयै, सुंदरता के साथ ॥

अपनी रवि को अंशु लै, सेवत जनु निशिनाथ ॥ १५५ ॥

[सुंदरी छंद]

ताहि लिये रविपुत्र सदा रत ।

चमर विभीषण अंगद ढारत ।

कीरति लै जग की जनु चारत ।

चन्द्रक^१ चंदन चंद सदारत^२ ॥ १५६ ॥

लक्ष्मण दर्पण को देखरावत ।

पाननि लक्ष्मण बंधु खवावत ॥

भर्थ लै लै नरदेव सदारत ।

देव अदेवनि पायन पारत ॥ १५७ ॥

[दोहा]

जामवंत हनुमंत नल, नील मरातिव^३ साथ ॥

छुरो छुरीली शोभिजै, दिगपालन के हाथ ॥ १५८ ॥

रूप वहिक्रम सुरभिसम, घचन रचन बहु भैव ॥

सभा मध्य पहिचानिये, नर नरदेव न देव ॥ १५९ ॥

१—चंद्रक = कपूर । २—सदारत = सदा + धारत = नित्य दुखी ।

३—मरातिव = माहोमरातिव शाहशाही भंडा ।

आई जय अभिषेक की, घटिका केशवदास ॥
 बाजे एकहियार बहु, दुंदुभि दीह अकाश ॥ १६० ॥
 [भूलना छंद]

तब लोकनाथ विलोकि कै रघुनाथ को निज हाथ ।
 सविशेष सौं अभिषेक की पुनि उच्चरी शुभगाथ ॥
 ऋषिराज इष्ट वशिष्ठ सौं मिलि गाधिनन्दन आइ ।
 पुनि बालमीकि बियास आदि जिते हुते मुनिरांइ ॥ १६१ ॥
 रघुनाथ शमु स्वयमु^१ को निज भक्ति दी सुखपाइ ।
 सुरलोक को सुरराज को किय दीह निर्भय राइ ।
 विधि सौं ऋषीशन सौं विनय करि पूजियौ परि पार ।
 बहुधा दर्ई तपवृत्त की सब सिद्धि सिद्ध सुमाइ ॥ १६२ ॥

[दोहा]

दीन्हौं मुकुट विभीषणै, अपना अपने हाथ ॥
 कंठमाल सुग्रीव को, दीन्ही थीरघुनाथ ॥ १६३ ॥

[चंचरो छंद]

माल थीरघुनाथ के उर शुभ्र सीतहि सो दर्ई ।
 अरिपयो हनुमन्त को तिन दृष्टि कै करुणामई ॥
 और देव अदेव घानर याचकादिक पाइयो ।
 एक अह्मद छोड़ि कै ज्यइ जासु के मन भाइयो ॥ १६४ ॥
 अंगद-देष ही नरदेव घानर नैश्रुतादिक घीर ही ।
 भरत लक्ष्मण आदि दै रघुवंश के सब वीर ही ॥

आजु मोसन युद्ध माङ्गु एकएक अनेक के ।
घाप को तब हौं तिलोदक दीह देहु विवेक के ॥ १६५ ॥

[दोहा]

राम—कोऊ मेरे वंश में, करिहै तोसों युद्ध ॥
तब तेरो मन होइगो, अंगद मोसों युद्ध ॥ १६६ ॥

देवस्तुति

[भूलना छंद]

ब्रह्मा—तुम हौं अनन्त अनादि सर्बग सर्वदा सर्वज्ञ ।
अब परहौ किं अनेक हौ महिमा न जानतः अह ॥
भ्रमियो करै जग लोक चोदह लोभ मोह समुद्र ।
रचना रची तुम ताहि जानत हौं न ब्रह्म न रुद्र ॥ १६७ ॥

[दंडक छंद]

शिव—अमल चरित तुम वैरिन मलिन करौ ,
साधु कहैं साधु परदारप्रिय अति है ।
एक थल स्थित पै बसत जगजन प्रिय ,
फेशोदात्त द्विपद पै बहुपद गति है ॥
भूषण सकल युत शीश धरै भूमिभार ,
भूतल फिरत पै अभूत भुवपति है ।
राखौ गाइ ब्राह्मणन राज सिंहसाय चिर ,
रामचन्द्र राज करौ अदभुत गति है ॥ १६८ ॥

इन्द्र—चैरी गाइ ब्राह्मण को ग्रन्थन में सुनियतु ,
कविकुलही के सुखरण हर काज है ।

गुरुशय्यागामी एकबालकै विलोकियतु,
मातंगनहीं के मतधारे कैसे साज है ॥
अरिनगरीन प्रति होत है अगम्यागौन,
दुर्गानहिं केशोदास दुर्गति सी आज है ।
देवतारि देखियतु गढ़नि गढ़ारि जीयो,
चिह चिह रामचन्द्र जाको ऐसो राज है ॥ १६६ ॥

पितर-बैठे एक छत्र तर छाँह सय छिति पर,
सूरकूलकलश सु राहु हित मति है ।
त्यक्त धामलोचन कहत सथ केशोदास,
विद्यमान लोचन छै देखियतु अति है ॥
अकर कहावत घनुष धरे देखियतु,
परम कृपालु पै कृपाणकरपति है ।
चिह चिह राज करो राजा रामचंद्र सब,
लोक कर्हे नरदेव देवदेवगति है ॥ १७० ॥

अग्नि-चित्रही में आज धरुसंकर विलोकियतु,
व्याह हो में नारिन के गारिन सों काज है ।
श्वजै कंषयोगी निशि धकै है वियोगी,
द्विजराज मित्र द्वेषी एक जलद समाज है ।
मेघै तो गगन पर गाजत नगर धरि,
अपयश डर यशही को लोभ आज है ।
दुःखी ही को खंडन है मंडन सकल जग,
चिह चिह राज करी जाको ऐसो राज है ॥ १७१ ॥

वायु-राजा रामचंद्र तुम राजहू सुयश जाको
भूतल के आस पास सागर को पास से ।
सागर में वड़ भाग वेप शेषनाग जू को
जपै सुखदानि सोई विष्णु को निवास से ॥
विष्णुजू में भूरिभाव भाव को प्रभाव जैसे
भवजू के भाल में विभूति को विलास से ।
भूति माहि चंद्रमा से चंद्र में सुधा को अंशु,
अंशुनि में केशोदास चंद्रिका प्रकाश से ॥ १७२ ॥

देवगण-राजा रामचंद्र तुम राज करो सब काल
दीरघ दुसह दुख दीनन को दारिये ।
केशोदास मित्रदोष मंत्रदोष ब्रह्मदोष
देवदोष राजदोष देश ते निकारिये ॥
कलह कृतघ्न महिमंडल के चरिवंड
पाखंड अखंड खंड खंड करि डारिये ।
बंचक कठोर ठेलि कीजै वाराघाट आठ,
भूठ पाठकंड पाठकारी काठ मारिये ॥ १७३ ॥

ऋषिगण-भोगभार भागभार केशव विभूतिभार
भूमिभार भूरि अभिषेकन के जल से ।
दानभार गानभार सकल सयानभार
धनभार धर्मभार अक्षत अमल से ॥

जयभार यशभार राजभार राजत है
रामशिर आशिर अशेष अंशबल से।
देश देश यत्र तत्र देखि देखि तेहि दुख
फाटत हैं दुष्टन के शीश दाग्यो कल से ॥ १७४ ॥

केशव-

[विजय छंद]

जाह नहीं करतूति कही स्वयं श्री स्वविता कविता करि हाणे।
याही ते केशवदास अशीष मढ़ै अपना करि नेक निहाणे।
कीरति देवनि की दुलही अश दुलह श्रीगुनाथ तिहाणे।
सातौ रसावल सातहु लोकन सातहु सागर पार विहाणे ॥ १७५ ॥

[रामलाला छंद]

किन्नर, यक्ष, गन्धर्व-

अजर अमर अनन्त जय जय चरित श्रीगुनाथ।
करत सुर नर सिद्ध अचरज भवण मुनि मुनि गाय ॥
काय मन वच जेम जानत शिला सम पर नारि।
शिला ते पुनि परम सुन्दरि करत नेक निहारि ॥ १७६ ॥
चमर दारत मातु ऊपर पाणि पीड़ा होइ।
विशदंड^१ ज्यों कोदंड हर को टूक कोन्हों देइ ॥
साधु होइ असाधु पछत द्विजन ही को मान।
सकल मुनि गण मुकुटमणि को मर्दिप्रे अमिमान ॥ १७७ ॥
सूर सुन्दर सरस रवि रति करत रति कहँ लालि।
एक पत्नीवत निबाहत भदन को मद घालि ॥

१-दाग्यो कल=दाहिम कल, धनार । २-विशदंड=कमल की जड़ ।

सुखद सुदृढ सपूत सोदर हनत नृप जा काज ।
 पलक में सोइराज छांड्यो मातु पितु की लाज ॥१७८॥
 मंथरा सेां मोद मानत विपिन पठयो पेलि ।
 सूर्पनखा की नाक काटी करन आई केलि ॥
 चंबु चापत अंगुरी शुक ऐत्रि लेत डेराइ ।
 बन्धु सहित कबन्ध के उर मर्ध पैठे धाइ ॥१७९॥
 सर्वथा सर्वश सर्वग सर्वदा रस एक ।
 अश ज्यों सीता विलोकी व्यग्र अमृत अनेक ॥
 बाण चूकत लक्ष्य को को गनै केलिक वार ।
 ताल सातों वेधियो शर एक एकहि वार ॥१८०॥
 सापराध असाधु अति सुग्रीव कीन्हों मित्र ।
 अपराध विन अति साधु बालिहि हन्यो जानि अमित्र ॥
 चलत जय चौगान को लै चलत दल चतुरंग ।
 देवशत्रुहि चले जीतन ऋक्ष वानर संग ॥१८१॥
 भूलिह जा तन निहारत गुरु सौ गिरिन समान ।
 निगरु देखो भये गिरिगण जलधि में ज्यों पान ॥
 यतन यतननि तरत सरयू डरत लोलत डीठि ।
 गये सागर पार दै पगु प्रगट पाहन पीठि ॥१८२॥
 वाजि गज रथ वाहिनी चढ़ि चलत श्रमित सुभाय ।
 लंक में विन पानहीं निज गये अपने पाय ।
 यक्ष को फल गहत यत्ननि यक्षपुरुष कहाय ।
 बेर जूठे दियो सेवरी भक्तियो सुख पाय ॥१८३॥

कुमुम कन्दुक लगत फाँपत मूँदि लोचन मूल ।
 शत्रु सन्मुख सहे हँसि हँसि शैल असि शर शूल ॥
 दूरि करत न दया दर्शन देह दंशत वंश ।
 भई चार न करत रावण वंश को निवँश ॥ १२४ ॥
 याण बेम्हाहि^१ आन को लागि नाम अपनो लेत ।
 काल सो रिपु आपु हति जयपत्र श्रीरहि देत ॥
 पुण्यकालन देत विप्रन तौलि तौलि कनक ।
 शत्रुसोदर को दई सब स्वर्ण ही को लंक ॥ १२५ ॥
 होइ मुक्त सो जाहि इनको मरत आवै नाम ।
 मुक्त एक न भये चानर मरे करि संग्राम ॥
 एक पल धिन पान भाये चार चार जम्हात ।
 चपँ चौदह नींद भूख पिआस छोड़ी गात ॥ १२६ ॥
 क्षमै यह अपराध अपने कोटि कोटि कराल ।
 अपराध एक न क्षम्यो गो डिज दीन को सब काल ॥
 यदपि लज्जण करी सेवा सर्व भाँति समेव ।
 नदपि मानत सर्वथा करि मरत ही की सेव ॥ १२७ ॥
 कहत इनको सर्व साँचे सकल रामा राय ।
 तनक सेवा दास की कहँ कोटिगुणित बनाय ॥
 डरत एक अपलोक^२ ते ये जीव चौदह लोक ।
 ठौर जाकहँ कहूँ न ताकहँ देत अपनो शोक^३ ॥ १२८ ॥

१—बेम्हा=निराशा । २—अपलोक=वदनामी, दुर्लोक ।

३—शोक=प्यान, पाप ।

छाँड़ि ऋषि द्विज देवऋषि ऋषिराज सब सुखपाइ ।
प्रगट सकल सनौदियन के प्रथम पूजे पाइ ॥
छोड़ि पितर त्रिशंकु है विपरीत यद्यपि देह ।
अवध केशव जात शूकर श्वान स्वर्ग संदेह ॥ १८६ ॥
एक पल उर मांभ आये हरत सब संसार ।
आयकै संसार में इन हरेउ भूतल भार ॥
शेष शम्भु स्वयम्भु भापत निगम नेतिन जासु ।
ताहि लघुमति वरणि कैसे सकत केशवदास ॥ १६० ॥

[दोहा]

यहि विधि चौदह भुवन के, गावत मुनि यश गाथ ।
प्रेम सहित पहिराइ सब, विदा किये रघुनाथ ॥ १६१ ॥

[भूलना छंद]

अभिषेक की यह गाथ श्रीरघुनाथ की नर कोइ ।
पल एक गावत पाइहै बहु पुत्र सम्पति सोइ ॥
जरि जाहिगी सब वासना भव विष्णु भक्त कहाइ ।
यमराज के शिर पाउँ दै सुरलोक लोकनि जाइ ॥ १६२ ॥

[रासराज्य वर्णन]

[भुजंगप्रयात छंद]

अनन्ता सवै सर्वदा शस्ययुक्ता ।
समुद्रावधि सप्त इती विमुक्ता ॥

(२१०) ;

सदा वृक्ष फूले फले तत्र सोहैं ।
जिन्हें अल्पधौ कल्प साखी विमोहैं ॥ १६३ ॥
सबै निम्नगा^१ क्षीर के पूर पूरी ।
भई कामगो सी सबै धेनु रुती ॥
सबै वाजि स्ववांजि ते तेज पूरे ।
सबै दग्धि स्वदंन्ति ते दर्प रुरे ॥ १६४ ॥
सबै जीव हैं सर्वदानन्द पूरे ।
क्षमी संयमी विक्रमी साधु शूरे ॥
युवा सर्वदा सर्व विद्या विलासी ।
सदा सर्व सम्पत्ति शोभा प्रकाशो ॥ १६५ ॥
चिरंजीव संयोग योगी अरोगी ।
सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी ॥
सबै शील साँदर्य सौगन्ध धारी ।
सबै ब्रह्मज्ञानी गुणी धर्मचारी ॥ १६६ ॥
सबै न्हान दानादि कर्माधिकारी ।
सबै चित्त चानुर्व्यं क्षिताप्रहारी ॥
सबै पुत्र पौत्रादि के सुख सार्जें ।
सबै भक्त माता पिता के विरार्जें ॥ १६७ ॥
सबै सुन्दरी सुन्दरी साधु सोहैं ।
शची सी सती सी जिन्हें देखि मोहैं ॥

सवै प्रेम की पुण्य की सधिनी^१ सी ।

सवै चित्रिणी पुत्रिणी पद्मिनी सी ॥ १६८ ॥

भ्रमै संघमी यत्र शोकै सशोकी ।

अधर्मै अधर्मौ अलोकै^२ अलोकी^३ ॥

दुखै तौ दुखी ताप तापाधिकारी ।

दरिद्रै दरिद्री विकारै विकारी ॥ १६९ ॥

[चौपाई]

होम धूम मलिनाई जहां । अति चंचल चल दल है तहां ।
 बाल नाश है चूड़ाकर्म । तीक्ष्णता आयुध के धर्म ॥ २०० ॥
 लेत जनेऊ भिदा दातु । कुटिल चाल सरितानि बखानु ।
 व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै । कोकिलकुल पुत्रन परिहरै ॥ २०१ ॥
 फागुहि निलज लोग देखिये । जुवा देवारी को लेखिये ।
 नित उठि वेभोई मारिये । खेलत में केहूँ हारि रे । २०

[दंडक]

भावै जहां विभिचारी वैद्य रमै परनारी,
 द्विजगन दंडधारी चोरी परपीर की ।
 मानिनीन हीं के मन मानिबत मान भंग,
 सिंधुहि उलंघि जाति करति शरीर की ॥
 मूलै तौ अधोगतिन पावत हैं केशोदास,
 नीडु ही सो है वियोग इच्छा गंगानीर की ।

(२१२) ,

बन्वा बासनानिः-जानु-बिद्यवा ; सुबाटिफार्ड ,
पेसी रीति राजनीति-राजै-रघुबीर-की ॥ २०३ ॥

[दोहा]:-

कविकुल ही के श्रीफलन, उर अमिलाप सुमाज ।
तियि ही को सप होत है, रामचंद्र के राज ॥ २०४ ॥

[दंडक] -

लुटिबे के नाते पाप-पट्टनै तौ लुटियतु
तेरिबै को मोहत-रु-तेरि डारियतु ; है ।
घालिबे के नाते-गर्व-घालियतु देवन-के
जारिबे के नाते-अघ-ओघ-जारियतु, है ॥
यांधिबे के नाते ताल-यांधियतु ; केशोदास-
मारिबे के नाते-तौ दरिद्र मारियतु, है ।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग-जीतियतु
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥ २०५ ॥

[चंद्रकला-छंदः] ।

सब के कल्पहुम के-यन हैं सब के घर, धारन-गाजत हैं ।
सब के घर शोमति देवसभा सब के जय हुंदुभि-घाजत हैं ॥
त्रिधि सिद्धि बिशेष अशेषनि सां सब लोग सबै मुख साजत हैं ।
कहि केशव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजंत हैं ॥ २०६ ॥

[दंडक]

जूमहि में कलह कलहमिय नारदै ,
कुरूप है कुबेरे लोम सब के चयन-को ।

(२१३)

पापन की हानि उर गुरुन को वैरी काम ,
आगि सर्वमन्त्री दुखदायक अयन को ।
विद्या ही में वादु बहुनायक है चारिनीधि ,
जारज है हनुमंत मीत उदयन को ।
आंखिन अछत अंध नारिकेर कृश कटि ,
ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को ॥ २०७

[दोहा]

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुःख अदेष ।
द्विस्वभाव अश्लेष में, ब्राह्मण जाति अजेय ॥२०८॥

[तोमर छंद]

बहु शब्द बंचक जानि । अलि पश्यतोहर^१ मानि ॥
नर छांहई अपवित्र । शर खंग निर्दय मित्र ॥२०९॥

[सोरठा]

गुण तजि औगुणजाल, गहत नित्यप्रति चालनी ॥
पुंश्चली ति^२ तेहिकाल, एकै कीरति जानिये ॥ २१० ॥

[दोहा]

धनद लोक मुरलोकमय, सप्तलोक के साज ।
सप्तह्वीपवति महि बसी, रामचंद्र के राज ॥ २११ ॥
दशसहस्र दशसै बरस, रसा बसी यहि साज ॥
स्वर्ग नर्क के मग थके, रामचन्द्र के राज ॥ २१२ ॥

(२१४)

चौगान घर्षण

[चौपाई]

बहि बिधि गये राम चौगान । सावकश^१ सब भूमि समान ॥
शोभन एक कोश परिमान । रचो रुचिर तापर चौगान ॥२१३॥
एक कोद^२ रघुनाथ उदार । भरत दूसरे कोद बिचार ॥
सोहत हाथे लीन्हें छुरी । फारो पीरी राती हरो ॥२१४॥
देखन लग्यो सबै जग जाल । डारिदियो भुव गोला हाल^३ ॥
गोला जाह जहाँ जहाँ अबै । होत तहीं तितहीं तित सबै ॥२१५॥
मनो रसिक सौचन रुचि रचे । रूप संग बहू नाचनि नचे ॥
लोक लाज छांडे अंग अंग । डोलत जनु जन मन के सँग ॥२१६॥
उत ते इत इन ते उत होई । नेकउ डोल न पावै सोई ॥
काम क्रोध मद मढ़यो अपार । मानो जीव म्रमै सँसार ॥ २१७॥
जहां तहां मारै सब कोह । ज्यों नर पंच विरोधी होह ॥
घरी घरी प्रति ठाकुर सबै । बदलत वासन^४ घाहन तयै ॥२१८॥

[दोहा]

जब जब जीतैं हाल हरि, तब तब बजत निशान ॥
हय गय भूख भूरि पट, दीजत लोगनि दान ॥ २१९ ॥

[चौपाई]

तब तेहि समय एक वेताल । पढ़यो गीत गुनि बुद्धि विशाल ॥
गोलन की बिनती सुखपाई । रामचन्द्र सेां कीन्ही आई ॥२२०॥

१—सावकाश=जब उना चौड़ा । २—कोद=तरफ, ओर । ३—हाल=
देहा वाली पाली । ४—वासन=पक्ष ।

[दंडक छंद]

पूरव की पुरी पूरी पापर पुरी से तन ,
 चापुरी वै दूरिही ते पायन परति हैं ।
 दक्षिण की पक्षिनी सी गच्छें अंतरिक्ष मग ,
 पक्षिम की पक्षहीन पक्षी ज्यों उरति हैं ।
 उत्तर की देतो हैं उतारि शरणागतनि ,
 वातन उतायली उतार उतरति हैं ।
 गोलन की मूरतिन दीजिये जू अभैदान ,
 रामचैर कहां जाईं चिनती करति हैं ॥ २२१ ॥

चंद्रोदय वर्णन

[दोहा]

प्राचीदिशि ताही समय, प्रगट भयो निशिनाथ ।
 चरुत ताहि विलोकि कै, सीता सीतानाथ ॥ २२२ ॥

[हरिणी छंद]

फूलन की शुभ गेंद नई । सूँवि सची जनु डारि दर्ई ।
 दर्पसु सो शशि श्रीरति को । आसन काम महीपति को ॥२२३॥
 मोतिन को श्रुति भूषण मनो । भूलि गई रवि की तिय मनो ।
 अंगद को पितु सो सुनिये । सोहत तारहि संग लिबे ।
 भूप मनो भव छत्र धरेउ । लोक वियोगिन को विडरेउ ॥२२४॥
 देवनदी जल राम कछो । मानहुँ फूलि सरोज रछो ।
 फेन किधौं नभसिंधु लसै । देवनदी जल हंस बसै ॥ २२५ ॥

(२१६)

: [दोहा]

चार चंद्रिका सिंधु में, शीतल स्वच्छ सतेज ।
मनो शेषमय शोभिजै, हरिपाधिष्ठित सेज ॥ २२६ ॥

: [दंडक छंद]

केशोदास है उदास कमलाकर सांकर,
शेषक प्रदोष ताप तमोगुण ठारिये ।
अमृत अशेष के विशेष भाष बरपत,
कोकनद मोद चण्ड ऋगहन विचारिये ।
परमपुरुषपदविमुक्त परप रम्भ,
सुसुख सुखद विदुषन उर धारिये ।
हरि है रो हिये में न हरिष हरिजनैनी,
चन्द्रना न चन्द्रमुक्ती नारद निहारिये ॥ २२७ ॥

याग वणन

[सुदरी, अंद]

रामसां, रामप्रिया कहां, यों हैंसि ।
याग देखावहु सांकरकेशशि ॥
राम, विलोकत बाग, अनन्तहि ।
ज्यों अवलोकत कामद, सन्तहि ॥ २२८ ॥
ब्रौलत मोर, तहाँ, सुख संयुत ।
ज्यों विरदाबलि, माटन के सुत ॥

कोमल कोकिल के कुल बोलत ।
ज्ञानकपाट कुची^१ जनु खोलत ॥ २२६ ॥
फूल तजै बहु वृत्तन को गनु ।
छोड़त आनंद आँसुन को जनु ॥
दाड़िम की कलिका मन मोहति ।
हेम कुपी जनु बन्दन सोहति ॥ २३० ॥

[दोधक छंद]

बेल के फूल लसैं अतिफूले ।
भौर भवैं तिनके रस भूले ॥
यें करवीर करी^२ वन राजै ।
मन्मथ वाणन की गति साजै ॥ २३१ ॥
केतकपुंज प्रफुल्लित सोहैं ।
भौर उड़ैं तिनमें अति मोहैं ॥
श्रीरघुनाथहि आवत भागे ।
जे अपलोक हुते अनुरागे ॥ २३२ ॥

[दोहा]

श्याम शोण द्युति फूल की, फूले बहुत पलास ।
जरै कामकैला मनो, मधुऋतु वात विलास ॥ २३३ ॥

[तोटक छंद]

बहु पंकज की कलिका हुलसी ।
तिनमें अलि श्यामल ज्योति लसी ॥

(२१८)

उपमा शुक सारिक चित्तघरी ।
जनु हेमकुपी रस सोंध मरी ॥ २३४ ॥

[तारक छंद]

उदरे उर दाड़िम दीह विचारे ।
सुदतीन के शोभन दन्त निहारे ॥
अति मंजुल बंजुल फुंज विराजें ।
बहु गुंजनिकेतन^१ पुंजनि साजें ॥
नर अन्ध भये दरशे तद मीरे ।
तिनके जनु लोचन हैं यकठौरे ॥ २३५ ॥
धल शीतल तप्त स्वभावनि साजें ।
शशि सूरज के जनु लोक विराजें ॥
जलयंत्र विराजत भाँति भली है ।
धर ते जलधार अकाश चली है ॥
यमुना जल सूक्ष्म वेप सँघारैउ ।
जनु चाहत है रविलोक विहारेउ ॥ २३६ ॥

[चंचरी छंद]

ति भाँनि कहीं कहीं लागि याटिका बहुधा भली ।
ब्रह्मयोप धने तहाँ जनु है गिरावन की धली ॥
नीलकंठ नचें धने जनु जानिये गिरिजा धनी ।
शोभिजै बहुधा सुगन्ध मनों मलैवन की धनी^२ ॥ २३७ ॥

१-गुंम निकेतन=मीरा । २-धनी=पत्नी

(२१६)

[चौपाई]

करुणामय बहु कामनि फली । जनु कमला की वासस्थली ॥
शोभे रम्भा शोभासनी । मनो शची की आनंदवनी ॥ २३८ ॥

[कमल छंद]

तरु चन्दन उज्वलता तन धरे ।
लपट्टी नव नागलता मन हरे ॥
नृप देखि दिगम्बर वन्दन करे ॥
चित चन्द्रकलाधर रूपनि भरे ॥ २३९ ॥
अति उज्ज्वलता सब कालहु बसै ।
शुक केकि पिकादिक कंठहु लसै ॥
रजनीदिन आनंदकंदनि रहै ।
मुखचन्दन की जनु चंदनि अहै ॥ २४० ॥

[तोटक छंद]

सब जीवन को बहु सुख जहां ।
विरही जनहीं कहँ दुःख तहाँ ॥
जहँ आगम पौनहिं को सुनिये ।
नित हानि असौंधहि को सुनिये ॥ २४१ ॥

[दोहा]

तप ही को ताड़न जहां, तृप चातक के चित्त ।
पात फूल फल दलनि को, अम अमरनि के मित्त ॥२

(३२२०)

[तारक छंद]

तिनमें एक कृत्रिम पर्वत - राजै ।
सृग पतिन की सब शोमहि साजै ॥
बहु भाँति सुगंध मलयगिरि मानों ।
फलधौत स्वरूप सुमेरु बखानों ॥ २४३ ॥
अति शीतल शंकर को गिरि जैसे ।
शुभ श्वेत लसै उदयाचल पेसो ॥
धुतिसागर में मँनाकु मनो है ।
अजलोक^१ मनो अजलोक^२ बने है ॥ २४४ ॥

[तोटक छंद]

सरिता तिनते शुभ वीनि चली ।
सिगरी सरितान की शोम दली ॥
इक चंदन के जल उज्ज्वल है ।
जग जहुसुता शुभशील गहै ॥ २४५ ॥

[चौपाई]

सुरगज को मारग छवि छाये । जनु दिविते भूतल पर आये ।
जनु धरणी में लसति विशाल । श्रुतित जुही को घन वनमाल ।

[दोहा]

तन्यो न भावै एक पल, केशव सुखद समीप ।
जासों सोहत तिनक सो, दोन्हें जंबूडीप ॥ २४७ ॥

१—अजलोक अवेध्या । २—अजलोक=बल्ललोक ।

[दोषक छंद]

एरण के मदकै ॥ जनु दूजी ।
है यमुनाद्युति कै जनु ॥ पूंजी ॥
धार मनो रसराज विशाला ॥
पंकजजालमई जनु ॥ माला ॥ २४८ ॥

[दोहा]

दुखखंडन तरवारि सी, किधौं शृंखला चारु ।
क्रीडागिरि^१ मातंग की, यहै कहै संसारु ॥ २४९ ॥
क्रीडागिरि ते अलिन की, अवली चली प्रकाश ॥
किधौं प्रतापानलन की, पदवी^२ केशवदास ॥ २५० ॥

[दोषक छंद]

श्रीर नदी जल कुंकुम सोहै । शुद्ध गिरा मन मानहुँ मोहै ॥
फंचन के उपवीतहि साजै । ब्राह्मण सो यह खंड विराजै ॥ २५१ ॥

[स्वागता छंद]

लौंगफूलमय सेवटि^३ लेखी । एलबीजवहु बालक देखी ।
केरफूलदल नावन माहीं । श्रीसुगन्ध तहँहै बहुधाहीं ॥ २५२ ॥

[दोहा]

खेवत मत्त मलाह अलि, को चरणै वह ज्योति ॥
तीन्खो सरिता मिलित जहँ, तहाँ त्रिवेणी होति ॥ २५३ ॥

१—क्रीडागिरि=धनावती पर्वत । २—पदवी=मार्ग । ३—सेवटि=सेउटा,
नदी की मिट्टी का कीचड़ ।

(२२२)

तड़ाग वर्णन

[दोहा]

सीता श्रीरघुनाथजू, देखी धर्मित शरीर ।
द्रुम अवलोकन छोड़ि कै, गये जलाशय तीर ॥२५४॥

[चौपाई]

आई कमलवासु सुखदेन । मुखवासन आगे है लेन ॥
देख्यो जाइ जलाशय चारु । शीतल सुखद सुगन्ध अपाह ॥२५५॥

[मरहटा छंद]

बनश्री को दर्पण चन्द्रातप^१ जनु किर्घां शरद आवास ।
मुनिजन गण मन सों विरही जन सों विशवलयानि विलास ॥
प्रतिबिम्बित थिरचर जीव मनोहर मनु हरिउदर अनन्त ।
बन्धनयुत सोहै विभुवन मोहै मानें थलि यशवन्त ॥ २५६॥

[चौपाई]

विषमय पै सब मुख को धाम । शम्बररूप बढ़ावै काम ॥
कमलनमष्य भ्रमर सुखदेत । सन्तद्वदय जनु हरिहि समेत २५७॥
धीवधीचसोहैं जलजात । तिनते अलिकुल उड़िउड़ि जात ॥
सन्तहियन सों मानहुँ भाजि । चञ्चल चली अशुभ की राजि २५८॥

सीता त्याग

[सुंदरी छंद]

एक समय रघुनाथ महामति ।
सीतहि देख सगर्भ बढ़ी रति ॥

१—चन्द्रातप=चादनी ।

सुन्दरि माँगु जो जीमहँ भावत ।

मो मन तो निरखे सुख पाषत ॥ २५६ ॥

सीता—जो तुम होत प्रसन्न महामति ।

मेरे बढ़ै तुमहीं सों सदा रति ॥

अंतर की सब बात निरंतर ।

जानत हौ सब की सबते पर ॥ २६० ॥

[दोहा]

राम—निर्गण ते मैं सगुण भो, सुनु सुंदरि तब हेत ।

और कछू मांगो सुमुखि, रुचै जो तुम्हरे चेत^१ ॥ २६१ ॥

[सुंदरी छंद]

सीता—जो सबते हित मोकहँ कीजत ।

ईश दया करिकै वरु दीजत ॥

हैं जितने ऋषि देवनदी तट ।

हैं तिनको पहिराय फिरौं पट ॥ २६२ ॥

[दोहा]

राम—प्रथम दोहद^२ क्यो करौं, निष्फल सुनि यह बात ।

पट पहिरावन ऋषिन को, जैयो सुन्दरि प्रात ॥ २६३ ॥

[सुंदरी छंद]

भोजन कै तब धीरघुनंदन ।

पाढ़ि रहे बहु दुष्टनिकंदन ॥

(२२४)

बाजे ॥ बजे 'अघरात भई' जय ।

दूतन 'आइ' प्रणाम^१ करी तय ॥ २६४ ॥

[चंचला छंद]

भूत^१ भावना^१ कही कही न जाय बैन ।

कोटिधा विचारियो परै कछू विचार मैं न ॥

सूर के उदोत होत बंधु आइयो सुजान ।

रामचंद्र देखियो प्रभात चंद्र के समान ॥ २६५ ॥

[संयुता छंद]

बहुभाँति बंदनता^१ करी । हंसि बोलियो न दयाधरी ॥

हमते कछू डिजदोष है । जेहिते कियो प्रभु रोपहै ॥ २६६ ॥

[दोहा]

मनसा धाचा कर्मणा, हम संवक सुनु तात ।

कौन दोष नहि बोलियतु, ज्यों कहि आये पात ॥ २६७ ॥

[संयुता छंद]

राम-कहिये कहा न कही परै । कहिये तौ ज्यो बहुते टरै ॥

तब दूत थात सवै कही । बहुभाँति देह दशा दही ॥ २६८ ॥

[दोहा]

भरत-सदा शुद्ध अति जानको, निन्दत त्यों खलजाल ।

जैसे श्रुतिहि सुभाय ही, पाखण्डी सब काल ॥ २६९ ॥

भव अपवादन^१ ते तेंज्यो, त्यों चाहत सीताहि ।

ज्यों जगके संयोगे ते, योगीर्जन समततहि ॥ २७० ॥

१-भूत भावना=कितों जीव के विचार ।

(२२५)

[भूलना छंद]

मनमानि कै अति शुद्ध सोतहिं आनियो निज धाम ।
अवलोकि पावक अंक ज्यों रविअंक पंकजदाम ॥
क्यहिं भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद वादि वखानि ।
शिव ब्रह्म धर्म समेत श्रोपितु साखि दोल्योहु आनि ॥२७१॥
यमनादि के अपवाद क्योँ द्विज छोड़िहैं कपिलाहि ।
विरहीन कोँ दुख देत क्योँ हर डारि चंद्रकलाहि ॥
यह है असत्य जो होइगो अपवाद सत्य सुनाथ ।
प्रभु छौँडि शुद्ध सुधा न पीवहु आपने विष हाथ ॥ २७२ ॥

[दोहा]

प्रिय पावनि प्रियवादिनी, पतिव्रता अति शुद्ध ।
जग को गुरु अरु गुर्विणी^१ छौँडत वेदविबुद्ध ॥ २७३ ॥
वे माता जैसे पिता, तुमसों भैया पाइ ।
भरत भये अपवाद को, भाजन भूतल आइ ॥ २७४ ॥

[हरिलीला छंद]

राम-साँची कही भरत घात सवै सुजान ।
सोता सदा परम शुद्ध कृपानिधान ॥
मेरी कछू अवाहिं इच्छ यहै सो हेरि ।
सोको हतौ घहुरि घात कहौ जो फेरि ॥ २७५ ॥

१—गुर्विणी=गर्भवती ।

(२२६)

[दोषक छंद]

सदमण—दूपत जैन सदा शुभ गंगा ।
छोड़हुगे वह तुंग तरंगा ॥
मायहि निन्दत हैं सब योगी ।
क्यों तजिहैं मत्र भूपति भोगी ॥ २५६ ॥
ग्यारसि^१ निन्दत है मठघाटी ।
भावति हैं हरिमकनि भापी ॥
निन्दत है तब नामनि बामी^२ ।
का कहिये नुम अन्तर्धामो ॥ २५७ ॥

[दोहा]

तुलसी को मानत प्रिया, गीतमतिव अति अत्र ।
सीता को छोड़न कहौ, कैसे कै सर्वत्र ॥ २५८ ॥

[रूपमाला छंद]

शुद्ध-स्वच्छ नहिं छोड़िये तिव गुम्बिणी पल दोह ।
छोड़ियो तब शुद्ध सीतहि गर्भमोचन होह ॥
पुत्र होह कि पुत्रिका यह बात जानि न जाह ।
लोक लोकन में अलोक न लीजिये रचुराह ॥ २५९ ॥

[दोहा]

रामचन्द्र जगचन्द्र तुम, फल दल फूल समेत ॥
सीता या धन पत्निनी, न्याय नहीं दुख देत ॥ २६० ॥

१—ग्यारसि=बारासी । २—बामी=बापमामी ।

घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज ॥
अपनेहि घर कत करत हो, शोक अशोक समाज ॥२८१॥

[तोटक छंद]

राम-तुम बालक हो बहुधा सबमें ।
प्रतिउत्तर देहु न फेरि हमें ॥
जो कहैं हम बात सो जाइ करौ ।
मन मध्य न और विचार धरौ ॥ २८२ ॥

[दोहा]

और होइ तौ जानिजै,^१ प्रभु सों कहा बसाइ ॥
यह विचारिकै शत्रुहा, भरत उठे अकुलाइ ॥ २८३ ॥

[दोषक छंद]

राम-सीतहि लै अब सत्वर^२ जेये ।
राखि महावन में पुनि ऐये ॥
लक्ष्मण जो फिरि उत्तर दैहौ ॥
शासन भंग को पातक पैहौ ॥ २८३ ॥
लक्ष्मण लै वन सीतहि धाये ।
स्थावर जंगम हू दुख पाये ॥
गंगहि देखि कह्यो यह सीता ।
श्रीरघुनायक को जनु गीता ॥ २८४ ॥

१—जानिज=समझ लेते, लड़कर होश ठिकाने कर देते । २—सत्वर=
शीघ्र ।

(२२८)

पार मये जबही जन दोऊ ।
भीम धनी जन जन्तु न कोऊ ।
निर्जल निर्जन कानन देख्यो ।
मृत पिशाचन को घर लेख्यो ॥ २२५ ॥

[नगस्वरूपिणी छंद]

सीता-सुनों न शानकारिका । शुकी पढ़ें न सारिका ॥
न होमधूम देखिये । सुगन्ध बन्धु लेखिये ॥ २२६ ॥
सुनों न वेद की गिरा । न बुद्धि होति है धिरा ॥
ऋषीन को कुटी कहाँ । पतिमंता बसैं जहाँ ॥ २२७ ॥
मिलै न कोउ एकहुँ । न आघते न जातहुँ ॥
चले हमैं कहाँ । लिये । डेरति हैं महा हिये ॥ २२८ ॥

[दोहा]

सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति, सीताजू के बैन ॥
उत्तर मुख आयो नहीं, जल मंरि आये नैन ॥ २२९ ॥

[नाराच छंद]

विलोकि लक्ष्मणै भरि विदेहजा विदेह सी ।
गिरी अचेत है मनो धनै यनै तड़ित सी ॥
करी जो छाँह एक हाथ एक यात^१ वान^२ नां ।
सिच्यो शरीर धीर नैननीर हीं प्रकाश साँ ॥ २३० ॥

१-यात=दवा, २-वास=पथ ।

[रूपमाला छंद]

राम की जपसिद्धि सी सिय को चले घन छांड़ि ।
 छांह एक फनी करौं फन दीह मालनि मांड़ि ॥
 बालमोकि विलोकियो वन देवता जनु जानि ।
 कल्पवृक्षलता किधौं दिवि ते गिरी भुव आनि ॥ २६१ ॥
 सोचि मंत्र सजीव जीवन जी उठी तेहि काल ।
 पूछियो मुनि कौन की दुहिता वह अरु बाल ॥
 सीता-हैं सुता मिथिलेश की दशरथपुत्रकलत्र ।
 कौन दोष तजी न जानति कौन आपुन अत्र ॥ २६२ ॥
 मुनि-पुत्रिके । मुनि मोहि जानहि बालमोकि द्विजाति ।
 सर्वथा मिथिलेश को गुरु सर्वदा शुभ भांति ॥
 होहिंगे सुत द्वै सुधी पगुधारिये मम ओक ।
 रामचन्द्र क्षितीश के सुत जानिहै तिहुँलोक ॥ २६३ ॥
 सर्वथा गुणि शुद्ध सीतहिं लैगये मुनिराइ ।
 आपनी तपसान की शुभ सिद्धि सी सुख पाइ ॥
 पुत्र द्वै भये एक श्रीकुश दूसरो लव जानि ।
 जातकर्महि आदि दै किय वेद भेद बखानि ॥ २६४ ॥

[दोहा]

वेद पढ़ायो प्रथमही, धनुर्वेद सविशेष ।
 अस्त्र शस्त्र दीन्हे घने, दीन्हे मंत्र अशेष ॥ २६५ ॥

कुत्ते की नालिश

[दोषक छंद]

एक समय हरि धर्मसभा में ।
बैठे हुते नरदेव प्रभा में ॥
संग सयै ऋषिराज विराजें ।
सोदर मंत्रिन मित्रन साजें ॥ २६६ ॥
कूकर एक फिरादिहि^१ आये।
डुंडुभी धर्मदुवार बजाये ॥
याजतही उठि स्रवण धाये ।
श्वानहि कारण वृकन आये ॥ २६७ ॥
कूकुर—काहुके क्रोध धिरोध न देख्यो ।
राम को राज तपोमय लेख्यो ॥
तामहँ मैं दुख दीरघ पायो ।
रामहिँ हँ सो निवेदन आयो ॥ २६८ ॥
स्रवण-धर्मसभा महँ रामहिँ जानो ।
श्वान चलो निज पीर यखानो ॥
श्वान—हँ अब राजसभा नहिँ आजं ।
आजं तो केशव शोभ न पाजं ॥ २६९ ॥

[दोहा]

देव अदेव नृदेव घर, पावन थल सुख दाह ।
बिन बोले आनंदमति, कुत्तिसत जीव न जाह ॥ ३०० ॥

१—फिरादिहि=कराँद, नालिश ।

[दोधक छंद]

राजसभा महँ श्वान बोलायो । रामहिं देखतही शिखरायो ।
राम कह्यो जो कछु दुख तेरे । श्वान निशंक कहो पुर^१ मेरो ॥ ३०१ ॥

[तारक छंद]

श्वान—तुम हो सर्वज्ञ सदा सुखदाई ।
अरु हो सबके समरूप सदाई ॥
जग सोवत है जगतीपति जागे ।
अपने अपने सब मारग लागे ॥ ३०२ ॥
नरदेवन पाप पर परजा को ।
निशि चासर होइ न रक्षक ताको ॥
गुण दोषन को जब होइ न दर्शी ।
तवहीं नृप होइ निरयपद पर्शी ॥ ३०३ ॥

[दोहा]

निज स्वार्थही सिद्धि द्विज, मोकों कख्यो प्रहार ॥
बिन अपराध अगाधमति, ताको कहा विचार ॥ ३०४ ॥

[तारक छंद]

तव ताकहँ लेन तहीं जन धाये ।
तवहीं नगरी महँ ते गहि ल्याये ॥
राम—यह कूकर क्यो बिन दोषहि माख्यो ।
अपने जिय चास कछु न विचाख्यो ॥ ३०५ ॥

(२३२)

[दोहा]

अहर्षं यह सोवत हो पंथ में, हाँ भोजन को जात ॥

• 'मैं अकुलौं अगाधमति, याको कीन्हों घात ॥ ३०६ ॥

[स्वागता छंद]

राम—ब्रह्म ब्रह्म ऋषिराज बखानो ।

धर्म कर्म बहुधा तुम जानो ॥

कीनं दंड द्विज को द्विज दीजै ।

खित्तचेति कहिये सोइ कीजै ॥ ३०७ ॥

कश्यप—

है अदण्ड्य भुवदेव सदाई । यत्र तत्र मुनियं रघुदाई ।

ईश शील अत्र याकहँ दीजै । चूकहीन अरि कोउ न कीजै ॥ ३०८ ॥

[तोमर छंद]

शत-मुनि श्वान कहि तू दंड । हम देहिं याहि अछंड ॥

कहिं घातें तू डर डारि । जिय मध्य आपु विचारि ॥ ३०९ ॥

[दोहा]

श्वान-मेरो भायो करहु जाँ, रामचन्द्र हितमंडि ।

कोमैं द्विज यहि मउपतो, और दंड सब छंडि ॥ ३१० ॥

[निशिपालिका छंद]

पीत पहिराई यष्ट बांधि शिर सों पटी ।

बोरि अतुरंग अरु जोरि बहुधा गटी ॥

पूजि परि पायँ मठु ताहि तयहीं दयौ ।
मत्त गजराज चढ़ि विप्र मठ को गयो ॥ ३११ ॥

[दोहा]

भयो रंक ते राज द्विज, श्वान कीन करतार ।
भोगन लाग्यो भोगवै, दुंदुभि वाजत द्वार ॥ ३१२ ॥

[सुंदरी छंद]

वृक्षत लोग सभा महँ श्वानहिं ।
जानत नाहिन या परिमानहिं ॥
विप्रहि तैं जो दर्ई पदवी वह ।
है यह निग्रह कैधौं अनुग्रह ॥ ३१३ ॥

श्वान कथित मठपति निंदा

श्वान—

[दोषक छंद]

एक कनोज हुतो मठधारी । देव चतुर्भुज को अधिकारी ॥
मन्दिर कोउ बड़ो जब आवै । अंग भली रचनानि बनावै ३१४ ॥
जादिन केशव कोउ न आवै । तादिन पलिका ते न उठावै ॥
भेटनि लै बहुधा धन कीनो । नित्य करै बहुभोग नवीनो ॥ ३१५ ॥
एक दिना यक पाहुन आयो । भोजन सो बहुभांति बनायो ॥
ताहि परोसनको पितु मेरो । बोलि लियो हित हो सब केरो ३१६ ॥
साहि तहां बहु भांति परोसो । केहं कहं नख माहँ रघो सो ॥
ताहि परोसि जहीं घर आयो । रोवत हैं हँसि कण्ठ लगायो ३१७ ॥

[चामर छंद]

मोहिं मातृ ततं दूधमात भोज को दियो ।
यात सों सिराइ तात छीर अंगुली छियो ॥
ध्यो द्रयो मप्यों गयो अनेक नरकवान भों ।
हैं मम्यो अनेक योनि श्रीध आनि श्रवान भो ॥३१८॥

[देहा]

चाको थोरो दोष में, दीन्हों द्रष्ट अगाध ॥
राम चराचर ईश तुम, क्षमियो यह अपराध ॥ ३१९ ॥
लोक करेउ अपवित्र घदि, लोक नरक को वास ॥
हुवै जो कोऊ मठपतिहि, ताको पुण्य विनाश ॥ ३२० ॥
औरौ एक कथा कहों, विकल भूपं की राम ॥
वहौ अयोध्या वसत है, वंशकार^१ के धाम ॥ ३२१ ॥

[वसंतनिलका छंद]

राजा हुतो प्रयत्न दुष्ट अनेकहारी ।
धाराणसी विमल छेत्र निवासकारी ॥
सो सत्यकेतु यह नाम प्रसिद्ध शरो ।
विद्याधिनेादरत धर्मविधान पूरो ॥ ३२२ ॥
धर्माधिकार पै एक द्विजाति कोन्हो ।
संकल्पद्रव्य बहुधा त्यहि चोरि लीन्हो ॥

१—वंशकार=वसंत, यम ।

बंदी विनोद गणिकादि विलासकर्ता ।
पावें दशांश द्विज दान अश्लेष हर्ता ॥ ३२३ ॥
राजा विदेश कहु साजि चमू गये हो ।
जूमेउ तहाँ समर योधन सेां भयो हो ॥
आये कराल किलदूत कलेशकारी ।
लोन्हे गये नृपति को जहँ दण्डधारी ॥ ३२४ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

धर्मराज—कहा भोगवै गो महाराज दू मैं ।
कि पापै कि पुण्यै करेउं भूरि भू मैं ॥
राजा—सुनौ देव मोकों कछु सुद्धि नाहीं ।
कहौ आपही पाप जो मोहि माहीं ॥ ३२५ ॥

धर्मराज—कियो तैं द्विजाती जो धर्माधिकारी ।
सुतो नित्य सङ्कल्पवित्तापहारी ॥
दियो दुष्ट रण्डानि मुण्डानि लै लै ।
महापाप माथे तिहारे सो दै दै ॥ ३२६ ॥
हुतो तैं सवै देश ही को नियन्ता ।
भले की बुरे की करी तैं न चिन्ता ॥
महा सूक्ष्म है धर्म की बात देखो ।
जितो दान दीन्हों तितो पाप लेखो ॥ ३२७ ॥

[दोहा]

कालसर्प से समुझिये, सवै राज के कर्म ॥
ताहू ते अति कठिन है, नृपति दान के धर्म ॥ ३२८ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

भयो कोटिधा मर्क संपर्क ताको ॥
हुते दोष संसर्ग के शुद्ध जाको ॥
सबै पाप भे क्षीण भे मुक्त लेखो ।
रहो श्रीधर्म अनि ह्ये कोलबंधो ॥ ३२९ ॥

लवणासुरवध

[भुजंगप्रयात छंद]

विदा ह्ये चले रामपै शत्रुहंता ।
चले साश्व हायो रघो युद्धरंता ॥
चतुर्धा चमू चारिहु ओर गाजें ।
यजें दुन्दुमी दोह दिग्धेव लाजें ॥ ३३० ॥

[दोहा]

केशव वासर वारहें, रूपति केशव धोर ।
लवणासुर के यमनि ज्यों, मेले यमुना तीर ॥ ३३१ ॥

[मनोरमा छंद]

लवणासुर आइगयो यमुनाबट ।
अबलोकि हँस्यो रघुनन्दन के भट ॥
घनुवाण लिये निकसे रघुनन्दन ।
मद के गज को सुत के हरि को जनु ॥ ३३२ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

लवणासुर-सुन्यी तें नहीं जो इहाँ भूलि आया ।
बड़े भाग भेरो बड़े भक्त पाया ॥

शत्रुघ्न— महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसें ।

तजै देश को कै सजै युद्ध मोसें ॥ ३३३ ॥

लवणासुर-वहै राम राजा दशग्रीवहंता ।

सो तो बन्धु मेरो सुरस्त्रीन रंता ॥

हताँ तोहिं चाको करौं चित्त भायो ।

महादेव की सेां बड़ो भक्त पायो ॥ ३३४ ॥

भये क्रुद्ध दोऊ दुवो युद्धरंता ।

दुवो अस्त्र शस्त्र प्रयोगी निहंता ॥

बली विक्रमी धीर शोभा प्रकाशी ।

नश्यो हर्ष दोऊ सबपै विनाशी ॥ ३३५ ॥

[दोहा]

शत्रुघ्न- लवणासुर शिवशूल विन, श्रार न लागै मोहिं ।

शूल लिये विन भूलिहं, हौं न मारिहौं तोहिं ॥ ३३६ ॥

[मोटनक छंद]

लीन्हौं लवणासुर शूल जहीं । मारेउ रघुनन्दन बाहू तहीं ॥

काट्यो शिर शूल समेत गयौ । शूली कर सुख त्रिलोक भयो ३३७

वाजे दिवि दुन्दुभि दीह तवै । आये सुर इंद्र समेत सबै ।

देव—

कान्हौं बहु विक्रम या रण में । माँगौ वरदान रुचै मन में ॥ ३३८ ॥

[प्रमाणिका छंद]

शत्रुघ्न—सनाढ्यवृत्ति जो हरै । सदा समूल सो जरै ।

अकालमृत्यु सो मरै । अनेक नर्क मों परै ॥ ३३९ ॥

(२३८)

सनाध्य जाति सर्वदा । यथा पुनीत नर्मदा ।
भर्जे सजे जे संपदा । विरुद्ध ते असंपदा ॥ ३४० ॥

[दोहा]

मयुरामंडल मधुपुष्पे, केशव स्ववश वसाइ ॥
देखे तव शत्रुघ्नज, रामचंद्र के पाँइ ॥ ३४१ ॥

रामारवमेघ

विश्वामित्र वसिष्ठ सों, एक समय रघुनाथ ॥
आरंभो केशव करन, अश्वमेघ को गाय ॥ ३४२ ॥

[चामर छंद]

राम-मैविली समेति तौ अनेक दान में दियो ॥
राजसूय आदि दै अनेक जह में कियो ॥
सौय त्याग पाप ते हिये सो हौं महा डरो ।
और एक अश्वमेघ जानकी । विना करौं ॥ ३४३ ॥

[दोहा]

कश्यप-धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तदृषि के साथ ।
ता यिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥ ३४४ ॥

[तोटक छंद]

करिये युतमूषण रूपरयी ।
मिथिलेशमुता इक स्वर्णमयी ॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि बिये ।
शुचि सों सब यज्ञ विधान किये ॥ ३४५ ॥

हयशालन ते हय छोरि लियो ॥
शशिवर्ण सो केशव शोभ रयो ॥
श्रुति श्यामल एक विराजतु है ॥
अलि स्यों सरसीरुह लाजतु है ॥ ३४६ ॥

[रूपमाला छंद]

पूजि रोचन स्वच्छ अक्षत पट्ट बांधिय भाल ॥
भूषि भूषण शत्रुदूषण छोड़ियो तेहि काल ॥
संग लै चतुरंग सैनहि शत्रुहंता साथ ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सो श्रीरघुनाथ ॥ ३४७ ॥
जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग ।
वाल्लि विप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग ॥
वेणु वीण मृदंग बाजत दुंदुभी बहु भेव ।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नरदेव ॥ ३४८ ॥

सेनावर्णन

[कमल छंद]

रात्रव की चतुरंग चमू चय को गनै केशव राज समाजनि ॥
सुरचुरंगन के उरभैं पग तुंग पताकन की पट्ट साजनि ।
दृष्टि परैं तिनते मुकुता धरणी उपमा वरणी कविराजनि ।
विदुकिधौंमुखफेनन केकिधौंराजशिरीश्रवैमंगललाजनि ॥३४९॥
रात्रव की चतुरंग चमू अपि शूरि उडी बलह बल छाई ।
मानौ प्रताप हुताशन धूम सो केशवदास अकाशन भाई ॥

मंडिकै पंच प्रभूत किधौं विधि रेणुमयी नव रीति
दुःख निवेदन को भयभारुको भूमि किधौं ३५१ ॥

[दंडक छंद]

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
शोपि शोपि जल भूरि भूरि थल गाय की।
केशोदास आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपनेही हाथ की।
उन्नत नवाइ नत उन्नत घनाइ भूप,
शत्रुन को जिविकाऽति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिश दिशि जाति सेना रघुनाथ की ॥ ३५१ ॥

[दोहा]

दिशि विदिशनि अचगाहि कै, मुख ही केशवदास।
यालमीकि के आश्रमहि, गयो तुरंग प्रकाश ॥ ३५२ ॥

[दोषकछंद]

दूरहि ते मुनि बालक धाये ।
पूजित चाजि त्रिलोकन आये ॥
भाल को पट्ट जही लय बाँच्यो ।
बाँधि तुरंगम जयरस राँच्यो ॥ ३५३ ॥

[श्लोक]

एकधीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघुदहः ।
नेन रामेण मुक्तोसौ राज्ञी गृहात्विमं वली ॥ ३५४ ॥

[दोधक छंद]

घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी ।

कौनेहि रे यह बाँधिय गाजी ॥

बोली उठे लव मैं यह बाँधो ।

यों कहिकै धनुसायक साँधो ॥

मारि भगाइ दिये सिंगरे यों ।

मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों ॥ ३५५ ॥

लव शत्रुघ्न युद्ध

[धीर छंद]

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये ।

कोदंड लोन्हे महा रोप छाये ॥

ठाढ़ो तहाँ एक घालै विलोक्यो ।

रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो^१ ॥ ३५६ ॥

[सुंदरी छंद]

शत्रुघ्न—चालक छाँडि दे छाँडि तुरंगम ।

तोसें कहा करीं संगर संगम ॥

ऊपर वीर हिये करुणा रस ।

वीरहि विप्र हते न कहूँ यश ॥ ३५७ ॥

[तारक छंद]

लव—कछु घात वड़ी न फहौ मुख धारे ।

१—मोक्यो=(मोच्यो) छोड़ा ।

(२४२)

लव सों न जुरी लवणासुर मोरे ॥
द्विजदोषन ही बल ताको सँहाखो ।
मरिही जो रहो सो कदा तुम माखो ॥ ३५ = ॥

[चामर छंद]

रामबंधु बाण तीनि छोड़ियो विशल से ।
माल में विशाल ताहि लागियो ते फूल से ॥
लव—घात कौन राजतात गात तैं कि पूजियो ।
कौन शत्रु तैं हतयौ जो नाम शत्रुहालियो ॥ ३५६

[मिशिपालिका छंद]

रोष करि बाण बहु माँति लव छंडियो ।
एक भयज सुत युग तीनि रथ खंडियो ॥
शस्त्र दशरथ सुत अस्त्र कर जो धरे ।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरे ॥ ३६० ॥

[तारक छंद]

रिपुहा तय बाण बहै कर लीन्हो ।
लवणासुर को रघुनंदन दीन्हो ॥
लव के उर में उरभूयो यह पत्नी ।
मुरझाई गिखो धरणी । महँ सत्री ॥ ३६१ ॥

[मोटनक छंद]

मोहे लव भूमि परे जबहीं ।
जय दुंदुभि बाजि उठे तबहीं ॥

भुव ते रथ ऊपर आनि धरे ।
शत्रुघ्न सों यों करुणानि भरे ॥ ३६२ ॥
घोड़ो तबहीं तिन छोरि लये ।
शत्रुघ्नि आनंद चित्त भयो ॥
लैके लव को ते चले जवहीं ।
सीता पहुँ बाल गये तबहीं ॥ ३६३ ॥

बालक— [भूलना छंद]

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि ।
चतुरंग, सैन भगाइकै तब जीतियो वह आजि ॥
उर लागि गो शर एक को भुव में गिखो मुरभाइ ।
वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ ॥ ३६४ ॥

[दोहा]

सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भई अचेत ।
मनों चित्र की पुत्रिका, मन क्रम वचन समेत ॥ ३६५ ॥

[भूलना छंद]

सीता-रिपु हाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यों परै करतार ।
पति देवता सब काल तो लव जी उठै यहि बार ॥
ऋषि हैं नहीं, कुश है नहीं लव लेइ कौन छड़ाइ ।
वन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ ॥ ३६६ ॥

[दोहा]

कुश-रिपुहि मारि संहारि दल, यम ते लेवँ छुड़ाई ।
लवहि मिलैहैं, देखिहैं, माता तेरे पाँइ ॥ ३६७ ॥

(२४४)

[सवैया]

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि थालि बली बर^१ सोर
ढाहि दिये शिर रावण के गिरि से गुरु जात न जातन
शूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आर सो
रावव को दल मचकरी सुर^२ अंकुश दै

[दोहा]

कुश की टेर मुनी जही, फूलि फिरे शुभ्र ।
दीप बिलो कि पतंगज्यों, यदपि भयो बहु धिम् ॥ ३६

[मनोरमा छंद]

रघुनन्दन को अथलोकतही कुश ।
उर माँक हयो शर शुद्ध निरंकुश ॥
ते गिरे रथ ऊपर लागतही शर ।
गिरि ऊपरज्यों गजराज कलेवर ॥ ३७ ॥

[सुंदरी छंद]

जूमि गिरे जवहीं अरिहा रन ।
भाजि गये तवहीं भट के गन ॥
काढ़ि लियो जवहीं लव को शर ।
कंट लग्यो तवहीं उठि सोदर ॥ ३८ ॥

[दोहा]

मिले जो कुश लव कुशल सों, याजि याँधि तरमूल ।
रणमहि ठाढ़े शोभिजे, पशुपति गरुपति तूल ॥ ३९ ॥

१-बर=बट टवर । २-सुर=वल से । ३-सुर=उत्तकार, । टेर ।

[रूपमाला छंद]

यज्ञमंडल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल ।
चर्म अंग कुरंग को शुभ स्वर्ण की संग वाल ॥
आस पास ऋषीश शोभित शूर सोदर साथ ।
आइ भग्गुल लोग वरणे युद्ध की सब गाथ ॥ ३७३ ॥

[स्वागता छंद]

भग्गुल—वालमीकि थल वाजि गयो जू ।
विप्र वालकन घेरि लयो जू ॥
एक वांचि पट घोटक वाँध्यो ।
दौरि दीह धनुसायक साँध्यो ॥ ३७४ ॥
भाँति भाँति सब सैन सँहाख्यो ।
आपु हाथ जनु ईश सँवाख्यो ॥
अछ शख तव बंधु जो धारयो ।
खंड खंड करि ताकहं डाख्यो ॥
रोप वेप वह वाण लयो जू ।
इन्द्रजीत लागि आपु दयो जू ॥
काल रूप उर माँह हयो जू ।
घोर मूर्छि तव भूमि भयो जू ॥ ३७५ ॥

[तोमर छंद]

वह वीर लै अरु वाजि । जवहीं चल्यो दल साजि ॥
तब और वालक आनि । मग रोकियो तजि कानि ॥ ३७६ ॥

(२४६)

तेहि मारियो तुव बंधु । तब है गयो सब अंधु ॥
बह बाजि लै अरु धीर । रण में रह्यो रुपि धीर ॥ ३७७

[दोहा]

बुधि बल विक्रम रूप गुण, शील तुम्हारे राम ॥
काकपत्तधर बाल है, जीते सब संग्राम ॥ ३७८ ॥

राम - [चतुष्पदी छंद]

गुणगण प्रतिपालक रिपुकुलघातक बालक ते रनरंता ।
दशरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवणासुर को हंता ॥
कोऊ है मुनिमुत काकपत्तयुत मुनियत हैं जिन मारे ॥
यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक मारे ॥ ३७९ ॥

[मरहट्टा छंद]

सदमण शुभलक्षण धुद्धि विचक्षण लेहु बाजि को शोधु ।
मुनि शिशु जनि मारेहु बंधु उधारेहु क्रोध न करेहु प्रयोधु ।
बहु सहित दक्षिणा दे प्रदक्षिणा चलयो परम रणधीर ।
देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत धीर ॥ ३८० ॥

[दोधक छंद]

सदमण को दल धीरघ देख्यो ।
कालहु ते अति भीम विशेख्यो ॥
कुश—दोमें कहाँ सो कहा लव कीजै ।
आयुध लीही कि घोटक दीजै ॥ ३८१ ॥

लक्ष्मण सह लवकुश युद्ध

लव—ब्रूत हो तो यहै प्रभु कीजै ।
 मो असु^१ दै वरु अश्व न दीजै ॥
 लक्ष्मण को दल सिंधु निहारो ।
 ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो ॥ ३२२ ॥
 कौन यहै घटिहँ अरि घरे ।
 नाहिन हाथ शरासन मेरे ॥
 नेकु जही दुचितो चित कीन्हो ।
 सूर बड़ो इपुधी^२ धनु दीन्हो ॥ ३२३ ॥
 लै धनु बाण बली तब धायो ।
 पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥
 यों दोड़ सोदर सैन सँहारें ।
 ज्यों वन पावक पौन विहारें ॥ ३२४ ॥
 भागत हैं भट यों लव आगे ।
 राम के नाम ते ज्यों अघ भागे ॥
 यूथप यूथ यों मारि भगायो ।
 बात बड़े जनु मेघ उड़ायो ॥ ३२५ ॥

[सवैया]

अति रोष रसे कुश केशव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचै ।
 त्यहिं बार न बार भई बहु वारन खड्ग हनै न गनै विरचै^३ ।

१—असु=प्राण । २—इपुधी=तरकरा । ३—विरच=कुद होते हैं ।

तहँ कुम्भ फट्टै गजमोती कट्टै ते चले बहु भोजित रोचि १
परिपूरण पूर^१ पनारेन ते जनु पीक कपूरन की किरचै ॥

[नाराच छंद]

भगे चपे चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणै ।
भगे रथी महारथी गयंद धृन्द को गणै ॥
कुशै लखे निरंकुशै विलोकि बंधु राम को ।
उठयो रिसाई कै बली बंध्यो सो लाज दाम को ॥ ३२७

[मीकिकदाम छंद]

कुश—न हौ मकराक्ष न हौ इंद्रजीत ।
विलोकि तुम्हें रण होइँ न भीत ॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तमगाथ ।
करी जनि आपनि मातु अनाथ ॥ ३२८ ॥

लक्ष्मण—कहौ कुश जो कहि आवति यात ।
विलोकत हीं उपवांतहि गात ॥
इते पर बालवयक्रम^२ जानि ।
हिये करुणा उपजै अति आनि ॥ ३२९ ॥
विलोचन लोचत^३ हैं लखि तोहिं ।
तजौ हठ आनि भजौ किन मोहिं ॥

१—पूर=पार । २—बालवयक्रम=बाल अवस्था । ३—लोचन=
बहुधाते ।

क्षम्यो अपराध अजौ घर जाहु ।

हिये उपजाउ न मातहि दाहु ॥ ३६० ॥

[दोधक छंद]

हौ इतिहौ कबहुं नहिं तोही । तू बरु वाएन वेधहि मोही ।
बालक विप्रकहा हनिये जू । लोक अलोकन में गनिये जू ॥ ३६१ ॥

कुश—

[हरणी छंद]

लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरौ । यज्ञ वृथा प्रभु को न करो ॥
हौ हय को कबहुं न तजौ । पट्ट लिख्यौ सोइ चांचि लजौ । ३६२ ॥

[स्वागता छंद]

बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो । चर्म बर्म बहुधा तिन खंड्यो ॥
ताहि हीन कुश चित्तहि मोहै । धूमभिन्न जनु पावक सोहै ३६३
रोष वेप कुश बाण चलायो । पौनचक्र जिमि चित्तभ्रमायो ॥
मोह मोहि रथ ऊपर सोये । ताहि देखि जड़ जंगम रोयो ॥ ३६४ ॥

[नाराच छंद]

विराम^१ राम जानि कै भरतथ सों कथा कहैं ।

विचारि चित्तमांझ वीर वीर वे कहां रहैं ॥

सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ विलुप्त है ।

अदेव देवता असैं कहा ते बाल दीन छै ॥ ३६५ ॥

[रूपमाला छंद]

अम—जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहां यहि वार ।

जाइ कै यह बात चर्णहु रक्षियो मुनिवार^२ ॥

हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ श्रार अनाथ ।
देखिये कहँ ल्याइयो मुनिपाल उत्तम गाथ ॥ ३६६

[सुदरी छंद]

भगुल आइ गये तथही बहु ।
धार^१ पुकारत आरत रक्षु ॥
वे बहुभांतिन सैन सँहारत ।
लक्ष्मण तो तिनको नहिं मारत ॥ ३६७ ॥
बालक जानि तजै कश्या करि ।
वे अति डीठ भये दल सँहरि ॥
कैहुँ न भाजत गाजत हैं रण ।
वीर अनाथ भये विन लक्ष्मण ॥ ३६८ ॥
जानहु जै^२ उनको मुनिबालक ।
वे कोउ हैं जगती प्रतिपालक ॥
हैं कोउ रावण के कि सहायक ।
के लवणासुर के हित लायक ॥ ३६९ ॥
भरत—बालक रावण के न सहायक ।
ना लवणासुर के हित लायक ॥
हैं निज पातक वृत्तन के फल ।
मोहत हैं रघुवंशिन के बल ॥ ४०० ॥
जीतहि को रणमांझ रिपुमहि ।
को करै लक्ष्मण के बल विघ्नहि ॥

लक्ष्मण सीय तजी जबते बन ।
लोक अलोकन पूरि रहे तन ॥ ४०१ ॥
छोड़ोइ चाहत ते तव ते तन ।
पाइ निमित्त करेउ मन पाषन ॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि ।
पूत भये तजि पाप समाजनि ॥ ४०२ ॥

[दोधक छंद]

पातक कौन तजी तुम सीता ।
पावन होत सुने जग गीता ॥
दोष विहीनहि दोष लगावै ।
सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥ ४०३ ॥
हमहं त्यही तीरथ जाइ मरेंगे ।
सतसंगति दोष अशेष हरेंगे ॥
वानर राक्षस ऋक्ष तिहारे ।
गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे ॥
तालगि कै यह बात विचारी ।
हो प्रभु संतत गर्व प्रहारी ॥ ४०४ ॥

[चंचरी छंद]

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले ।
जामवन्त चले विभीषण और वीर भले भले ॥
को गनै चतुरंग सेनहि रोदसी नृपता भरी ।
जाइके अवलोकियो रण में गिरे गिरि सेकरी ॥ ४०५ ॥

(२५२)

लव भरत युद्ध

[रूपमाला छंद]

जामवंत विलोकि कै रण भीमव्रू हनुमंत ।
श्रेण की सरिता वही सुअनंत रूप दुरंत ॥
यत्र तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप ।
दृष्टि दृष्टि परे मनो बहु यात श्रुत अनूप ॥ ४०६ ॥
पुंज कुंजर शुभ्र स्यंदन शोभिजै श्रुति शूर ॥
ठेलि टेलि चले गिरोशनि पेलिथांशित पूर ॥
प्राहतुंग तुरंग कच्छप चारु चर्मशियाल ॥
चक्र से रथचक्र पैरत गृह वृद्ध मराल ॥ ४०७ ॥
केकरे कर वाहु मीन गयंदशुंड मुजंग ।
चीर चीर मुदेश केश शियाल जानि मुरंग ॥
बालुका बहु माँति हैं मणिमाल जालप्रकाश ।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिवाल केशवदास ॥ ४०८ ॥

[दोहा]

नामवरण लघु वेप लघु, कहत रीकि हनुमन्त ॥
इतो बड़े विक्रम किया, जीते युद्ध अनंत ॥ ४०९ ॥

[तारक छंद]

भरत—हनुमंत दुरंत नदी अथ नागौ ।
रघुनाथ सहोदर जी अमिलारौ ॥

तव जो तुम सिंधुहि नाँघि गयेजू ।

अब नाँघहु काहे न भीत भयेजू ॥ ४१० ॥

[दोहा]

हनुमान—सीतापद संमुख हुते, गये सिंधु के पार ।

विमुख भये क्यों जाहुँ तरि, सुनो भरत यहीवार ॥ ४११ ॥

[तारक छंद]

धनु वाण लिये मुनिवालक आये ।

जनु मन्मथ के युग रूप सुहाये ॥

करिवे कहँ शूरन के मद हीने ।

रघुनाथक मानहुँ द्वै चपु कीने ॥ ४१२ ॥

भरत—मुनिवालक है तुम यज्ञ करावो ।

सु किधौं वर वाजिहि बांधन धावो ॥

अपराध क्षमो सब आशिष दीजै ।

वर वाजि तजौ जिय रोष न कीजै ॥ ४१३ ॥

[दोहा]

बांध्यो पट्ट जो शीश यह, क्षत्रिन काज प्रकाश ।

रोष करेउ चिन काज तुम, हम विप्रन के दास ॥ ४१४ ॥

[दोधक छंद]

कुश—बालक वृद्ध कहो तुम काको ।

देहनि को किधौं जीवप्रभा को ॥

है जड़ देह कहै सब कोई ।

जीव सो बालक वृद्ध न होई ॥ ४१५ ॥

(२५४)

जीय जरे न मरे नहिं छीजै ।
ताकहँ शोक कहा करि कीजै ॥
जीवहि विप्र न क्षत्रिय जानी ।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनी ॥ ४१६ ॥
जो तुम देहु हमें कहु शिखा ।
तो हम देहिं तुम्हें हय भिखा ॥
चित्त विचार परे सोइ कीजै ।
दोष कहु न हमें अब दीजै ॥ ४१७ ॥

[स्वागता छंद]

विप्र बालकन की सुनि घानी ।
कुन्द सुरसुत भो अभिमानी ॥ ४१८ ॥
सुग्रीव—विप्र पुत्र तुम शीश सँमारो ।
राखि लेहि अब ताहि पुकारो ॥ ४१९ ॥

लव के कहु घचन

[गीरी छंद]

लव—सुग्रीव कहा तुम सें रण भांडीं ।
तो अति कायर जानि कै छाँड़ीं ॥
यालि तुम्हें यहु नाच नचायो ।
कहा रणमंडन मोसन आयो ॥ ४२० ॥

[तामर छंद]

फलहीन सो ताकहँ बाण चलायो ।
अति वात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो ॥
तब दौरिकै बाण विभीषण लीन्हों ।
खव ताहि विलोकतहीं हँसि दीन्हों ॥ ४२१ ॥

[सुंदरी छंद]

आउ विभीषण तू रणदूपण ।
एक तुहीं कुल को किलभूपण ॥
जूझ जुरे जे भले भय जी के ।
शत्रुहि आइ मिले तुम नीके ॥ ४२२ ॥

[दोधक छंद]

देववधू जवहीं हरि ल्यायो ।
क्यों तवहीं तजि ताहि न आयो ॥
यों अपने जिय के डर आयो ।
छुद्र सबै कुलछिद्र बतायो ॥ ४२३ ॥

[दोहा]

जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान ।
ताकी पत्नी तू करी, पत्नी मातु समान ॥ ४२४ ॥
को जानै कै चार तू, कही न है है माइ ।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राइ ॥ ४२५ ॥

(२५६)

[तोटक छंद]

सिगरी जग माँस, हँसावत हैं ।
रघुवंशिन पाप, नशावत, हैं ॥
धिक तोकहँ तू, अजहँ जो जियै ।
म्वल जाइ हलाहल क्यों न पिये ॥ ४२६ ॥
कहु है अथ तोकहँ लाज हिये ।
कहि कौन विचार हथ्यार लिये ॥
अथ जाइ करोप^१ की आगि जरी ।
गद धौंधि कै सागर वृद्धि मरी ॥ ४२७ ॥

[दोहा]

कहा कहँ है भरत को, जानत है सब कोय ।
तोसो पापी सग है, क्यों न पराजय होय ॥ ४२८ ॥
यहुत युद्ध भो भरत सों, देव अदेव समान ।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन^२ बान ॥ ४२९ ॥

राम-कृश संवाद :-

भरतहि भयो विलंब कहु, आये श्रीरघुनाथ ॥
देख्यो वह संग्रामधल, जूझि परे सब साथ ॥ ४३० ॥

[तोटक छंद]

रघुनाथहि आवत आइ गये । रण में मुनिबालक रूपरये ॥
गुण रूप सुशीलन सों रण में । प्रतिबिंब मनो निज दर्पण में ॥ ४३१ ॥

१-करोप=जगती करे, करसी ।

[मधुतिलक छंद]

सीता समान मुखचंद्र विलोकि राम ।
वृक्षयो कहां बसत है तुम कौन ग्राम ॥
माता पिता कवन कौन्यहि कर्म कीन ।
विद्याविनोद शिष कौन्यहि अख दीन ॥ ४३२ ॥

[रूपमाला छंद]

कुश-राजराज तुम्हें कहा ममवंश सेां अब काम ।
वृक्षि लीन्हेहु ईश लोगन जीतिकै संग्राम ॥
राम-हौं न युद्ध करौं कहे विन विप्रवेष विलोकि ।
वेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥ ४३३ ॥
कुश-कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ ।
बालमीक अशेष कर्म करे कृपारस भोइ ॥
अख शख सबै दये अरु वेद मेद पढ़ाइ ।
बाप को नहीं नाम जानत आजुलौं रघुराइ ॥ ४३४ ॥

[दोषक छंद]

जानकि के मुख अक्षर आने । राम तहीं अपने सुत जाने ॥
विक्रम साहस शील विचारे । युद्ध कथा कहि आयुध डारे ४३५
राम-अंगद जीति इन्हें गहि ल्यावो ।
कै अपने बल मारि भगावो ॥
वेगि बुझावहु चित्त चिता को ॥
आजु तिलोदक देहु पिता को ॥ ४३६ ॥

अंगद तौ अंग अंगनि फूले ।
पौन के पुत्र कहाँ अति मूले ॥
आइ छुरे लव सों तइ लै कै ।
बात कही शतखंडन कै कै ॥ ४३७

अंगद लव संग्राम

लव—अंगद जो तुम पै बल हो तो ।
तौ बह सूरज को मुन को तो ॥
देखत ही जननी जो तिहारी ।
घा संग सोचति ज्यों बरनारी ॥ ४३८ ॥
जादिन ते युवराज कहाये ।
विभ्रम बुद्धि विवेक बहाये ॥
जीबत पै कि मरे पहुँ जैहै ।
कौन पिताहि तिलोदक दहै ॥ ४३९ ॥
अंगद हाथ गहै तइ जोइ ।
जात तहीं तिल सो फटि सोई ॥
पर्वत पुज जिते उन भेले ।
फूल के बल लै बाणन भेले ॥ ४४० ॥
बाणन वेधि रही सब देही ।
बानर ते जो भये अब सेही ॥

१—सैदी=सपाही नामक वन गन्तु, शकजड़ी ।

भूतल ते शर मारि उड़ायो ।
खेल के कंदुक को फल पायो ॥ ४४१ ॥
सोहत है अथ ऊरध ऐसे ।
होत बटा नत को नभ जैसे ॥
जान कहं न इतै उत पावै ॥
गोवल चित्त दशों दिश धावै ॥ ४४२ ॥
बोल घट्यो सो भयो सुरभंगी ।
हूँ गयो अंग त्रिशंकु को संगी ।
हा रघुनायक हौं जन तेरो ।
रक्षहु गर्व गयो सब मेरो ॥ ४४३ ॥
दीन सुनी जन की जब यानी ।
जी करुणा लव धारण आनी ॥
छाँड़ि दियो गिरि भूमि पखोई ।
विहल हूँ अति मानों मखोई ॥ ४४४ ॥

[विजय छंद]

मैरघ से भट भूरि भिरे बल खेल खड़े करतार करे कै ।
भारे भिरे रणभूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि अरे कै ।
रोष सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहु गरे कै ।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खायें मरे नग नाग मरे क ॥ ४४५ ॥

[दोधक छंद]

वानर ऋत्न जिते निशिचारी । सेन सबै इक बाण सँहारी ॥
बाण बिधे सब ही जय जोये । स्यंदन में रघुनंदन सोये ॥ ४४६ ॥

(२६०)

[गीतिका छंद]

रण-जोड़ के सब शोश । भूपण संग्रहे जे भले भले ।
हनुमंत को अरु जामवंतहिं वाजि स्यों प्रसि लै चले ॥
रण जीति के लव साथ लै करि मातु के कुश परे ।
शिर संधि कंठ लगाय आनन चूमि गोद द्यौ ॥

सीता शोक

[रूपमाला छंद]

चीन्हि देवर को विभूषण देखि कै हनुमंत ॥
पुत्र हीं विधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत ॥
बाप को रण मारियो अरु पितृघ्नावृ मंहारि ।
आनियो हनुमंत बांधि न आनियो मोहि गारि ॥ ४४८ ॥

[दोहा]

माता सब काफ़ी करी, विधवा एकहि वार ॥
मों से और न पापिनी, जाये धंसकुठार ॥ ४४९ ॥

[दोषक छंद]

पाप कहाँ छति थापहि जैहो । लोक चतुर्दश ठौर न पँहो ।
राजकुमार कहै नहि कोऊ । जारज जाइ कहाचहु दोऊ ॥ ४५० ॥

कुश—मो, कहँ दोष कहा सुनु । माता ।

बांधि लियो जो सुन्यो उन भ्राता ॥

—हैं तुमहीं तेहि वार पडायो ।

राम पिता कथ मोहि सुनायो ॥ ४५१ ॥

[दोहा]

मोहि विलोकि विलोकि कै, रथ पर पौढ़े राम ॥
जीवत छौंड़यो युद्ध में, माता कर विश्राम ॥ ४५२ ॥

[सुंदरी छंद]

आइ गये तवहीं मुनिनायक ।
श्री रघुनंदन के गुणगायक ॥
वात विचारि कही सिगरी कुश ।
दुःख कियो मन में कलिअंकुश ॥ ४५३ ॥

[रूपवती छंद]

कीजै न विडंबन संतति सीते ।
भावी न मिटै सुकहूं जगगीते ॥
तू तो पतिदेवन की गुरु बेटी ॥
तेरी जग मृत्यु कहावति चेटी ॥ ४५४ ॥

[तोटक छंद]

सिगरे रणमंडल मांझ गये ।
अवलोकतहीं अति भीत भये ॥
दुहुँ बालन को अति अद्भुत विक्रम ।
अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥ ४५५ ॥

सीता राम सम्मेलन

[दंडक छंद]

श्रोणित सलिल नर वानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत विष विभीषण डारे हैं ।

(२६२)

चमर पताका गुड़ी बढ़या अनल सम,
रोगरिपु जामयंत केशव विचारे हैं ।
याजि सुरवाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत संधु इंदु अमृत निहारे हैं ।
सोहत सहित शेष रामचंद्र कुश लव,
जीति कै समरसिंधु साँचे ह सुधारे हैं ॥ ४५६ ॥

[दोहा]

सीता-भनसा बाधा कर्मणा, जो मेरे मन राम ।

तौ सब सेना जी उठे, दोहि घरी न विराम ॥ ४५७ ॥

[दोधक छंद]

सीय उठी सब सेन संभागी । केशव सोचत ते जनु आगी ॥

स्यों सुत सीतहि लै सुखकारी । राघव के मुनि पाँयन पारी ॥ ४५८ ॥

[मनोरमा छंद]

शुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ ॥

वर्षा वर्षे सुर फूलन की तहँ ॥

बहुधा विधि दुंदुभी के गण बाजत ।

दिगपाल गयंदन के गण लाजत ॥ ४५९ ॥

[रूपमाला छंद]

सुंदरी सुत लै सहोदर याजि लै सुखपाइ ।

साथ लै मुनि यालमीकहि दीह दुःख नशाइ ॥

राम धाम चले भले यश लोकलोक बढ़ाइ ॥

भाँति भाँति सुदेश केशव दुंदुभीन बजाइ ॥ ४६० ॥

भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न पुरभीर शरत जात ।
चौर दारत हैं दुवौ दिशि पुत्र उत्तमगात ॥
छत्र है कर इन्द्र के शुभ शोभिजै बहु भेव ।
मत्तदंति चढ़े पढ़ें जय शब्द देव नृदेव । ४६१ ॥

[दोहाक छंद]

यहथली रघुनंदन आये । धामनि धामनि होत बधाये ॥
भी मिथिलेशसुता बड़ भागी । स्यों सुत सासुन के पगलागी ४६२

[दोहा]

चारि पुत्र द्वै पुत्र सुत, कौशल्या तब देखि ॥
पायो परमानंद मन, दिगपालन सम लखि ॥ ४६३ ॥

[रूपमाला छंद]

यज्ञ पूरण के रमापति दान देत अशेष ।
हीर नीरज चीर मानिक वर्षि वर्षा वेप ॥
अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति ।
भवन भूषण भूमि भाजन भूरि वासर राति ॥ ४६४ ॥

[दोहा]

एक अयुत गज वाजि द्वै, तीनि सुरभि शुभवर्ण ॥
एक एक विग्रहि दर्श, केशव सहित सुवर्ण ॥ ४६५ ॥
देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक ॥
मन मायो पायो सबन, कीन्हें सबन अशोक ॥ ४६६ ॥

राज्य वितरण

अपने अरु सोदरन के, पुत्र विलोकि समाः
न्यारे न्यारे देश दै, नृपति करै भगवान् ॥
कुश लख अपने भरत के, नन्दन पुष्कर तक्ष ॥
लक्ष्मण के अंगद भये, चित्रकेतु रणपक्ष ॥ ६

[भुजंगप्रयात छंद]

भले पुत्र शशुम्न है दीप जाये ।
सदा साधु शूरे बड़े भाग पाये ॥
सदा मित्रपोषी हनै शत्रु छाती ।
सुवाहै बड़े दूसरो शत्रुघाती ॥ ४६ ॥

[दोहा]

कुश को दई कुशावती, नगरी कोशलदेश ॥
लख को दई अवंतिका, उत्तर उत्तम वेप ॥ ४७० ॥
पश्चिम पुष्कर को दई, पुष्करवति है नाम ॥
तक्षशिला तक्षहि दई लई जीति संग्राम ॥
अंगद कहै अंगदनगर, दीन्हौ पश्चिम ओर ॥
चंद्रकेतु चन्द्रायती, लोन्हौ उत्तर जोर ॥ २७ ॥
मथुरा दई सुवाहु को, पूरण पावनगाथ ॥
शत्रुघात को नृप करयो, देशहि को रघुनाथ ॥ ४७६ ॥

[तोटक छंद]

यहि माँति सों रक्षित भूमि भई ।
सब पुत्र भतीजन बाँट दई ॥

सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये ।

बहु भाँतिन के उपदेश दिये ॥ ४७३ ॥

राम कथित नीति शिखा

[चामर छंद]

बोलिये न भूठ ईठि^१ मूढ़ पै न कीजई ।

दीजिये जो बात हाथ भूलिह न लीजई ॥

नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को ।

यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै^२ अमित्र को ॥ ४७४ ॥

[नाराच छंद]

जुवा न खेलिये कहूँ जुवान वेद रक्षिये ।

अमित्रभूमि माहूँ जै अभक्ष भक्ष मक्षिये ॥

करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये ।

सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिये ॥ ४७५ ॥

वृथा न पीड़िये प्रजाहिपुत्रमान^३ पारिये^४ ।

असाधु साधु वृक्षि कै यथापराध मारिये ॥

कुदेव^५ देव नारि को न बालविच लीजिये ।

विरोध विप्रवंश सों सो स्वग्रह न कीजिये ॥ ४७६ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

परद्वय को तौ विषप्राय लेखौ ।

परस्त्रीन सों ज्यों गुरुस्त्रीन देखौ ॥

१—ईठि=मित्रता । २—जै=मिन, मत । ३—पुत्रमान=बेटे की तरह ।

४—पारिये=पालियो ५—कुदेव=(कु+देव) भूमिदेव, प्राणप ।

(२६६)

तज्जी काम क्रोधी महा मोह लोभी ।
तज्जी गर्व को सर्वदा चित्त लोभौ ॥ ४३३ ॥
यशै संग्रहौ निग्रहौ युद्ध योधा ॥
करी साधु संसर्ग जो बुद्धिवोधा ॥
दित् होइ सो देह जो धर्मशिखा ।
अधर्मीन को देहु जै चाकभिक्षा ॥ ४३४ ॥
छतग्री कुवादी परस्त्रीविहारी ।
करी विप्र लोभी न धर्माधिकारी ॥
सदा द्रव्य संकल्प को रहि लीजै ।
द्विजातीन को आपुही दात दीजै ॥ ४३६ ॥

[सबैया]

तेरहमंडलमंडितभूतल भूपति जों क्रमही क्रम साध
कैसेहु ताकहँ शत्रु न मित्र सुकेशवदास उदासन बाधै
शत्रु समीप परे तेहि मित्र से तासु परे जो उदास कैं जायै
विप्रह संधिन दाननिंसिधु लीं लै चहुँ श्रोतनि तौ सुख सोयै

[दोहा]

राजधीवर्य कसेहँ, हेतु न उर अबदात ॥
जैसे तैसे आपुवर्य, ताकहँ कीजै तात ॥ ४३१ ॥

